अप्रैल - सितंबर 2007 वर्ष : 39 * अंक : 2/3

प्रतियोगिता विशेषांक

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

भा. प. अ. केंद्र में विकसित संयंत्र

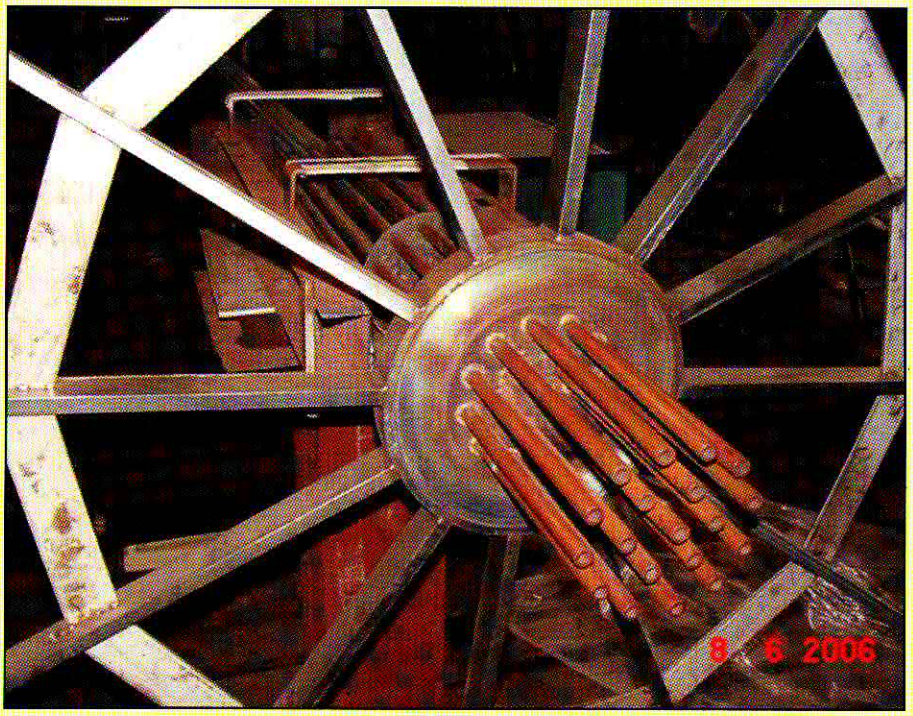

नाभिकीय ईंधन छड़ सम्मुच्य समरूपक

: मूल्य : 20 रु.

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता – 2007

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित **हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता** हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं । लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए । लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है । **मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ-साथ अच्छे रेखाचित्रों / फोटोग्राफों, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्त्व दिया जाता है।** अत: चित्रों को अलग से सफेद कागज / ट्रेसिंग पेपर पर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें । फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हों तो उचित रहेगा । इन्हें लेख के अंत में संलग्न करें । नीचे दिये गये पते पर कृपया दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000-4000 शब्द) भेजें ।

अंतिम तिथि : 15 फरबरी 2008

: पुरस्कार :

प्रथम	–	2000/= रु.
द्वितीय	–	1500/= रु.
तृतीय	–	1000/= रु.
प्रोत्साहन	–	500/= रु.

पांच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं अहिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार 500/- रु. (प्रत्येक) के दिये जायेंगे । अत: अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें ।

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं ''वैज्ञानिक'' की संपत्ति होगी। ''वैज्ञानिक'' पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे । यदि रचना एक ही लेखक द्वारा लिखी गयी हो तो उचित होगा।

प्रविष्टियां भेजने का पता :

श्री. कुलवंत सिंह, प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक ''वैज्ञानिक'',
वैज्ञानिक अधिकारी, पदार्थ संसाधन प्रभाग (MPD), मॉड लैब,
भा. प. अ. केंद्र (B.A.R.C), मुंबई – 400 085. फोन : 022 2559 5378

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष 39 अंक 2/3

अप्रैल - सितंबर 2007

प्रतियोगिता विशेषांक :

: व्यवस्थापन मंडल :

श्री. कुलवंत सिंह
(संयोजक)

डॉ. अशोक कुमार सूरी
श्री नंद लाल सोनी
श्री सत्य प्रभात प्रभाकर
श्री संजय गोस्वामी

: संपादन मंडल :

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
(संयोजक)

श्री जय प्रकाश त्रिपाठी
श्री कवींद्र पाठक
श्री शिव कुमार सिंह

वार्षिक शुल्क

आजीवन	संस्थागत	व्यक्तिगत
400 रु.	100 रु.	50 रु.

कार्यालय

"वैज्ञानिक", हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई - 400 085.

संपादकीय 3

लेख

1. चॉकलेट : अतीत के दैवीय औषधीय पदार्थ से वर्तमान के स्वास्थ्यवर्धक खाद्य-पदार्थ तक 5
   - डॉ. राज किशोर

2. न्यूट्रीशनल जीनोमिक्स 18
   - जसप्रीत कौर

3. मानव मस्तिष्क : अनंत संभावनाओं का द्वार 21
   - आलोक कुमार मिश्र एवं डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र

4. पारंपरिक ज्ञान और दातौन 28
   - नरेश चन्द्र तिवारी

5. 21वीं सदी का अमृत-स्टीविया 33
   - सुभाष चन्द्र

6. आयुर्विज्ञान में विकिरण प्रतिरक्षा आमापन तथा प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन के क्रांतिकारी विकास एवं उपयोग 36
   - डॉ. यशवंत नाईक

7. अंतरिक्ष - वर्तमान और संभावनाएं 48
   - जितेंद्र के. खर्डे

8. हृदय : धड़कनों से खामोशी तक का सफ़र 52
   - कु. राशी मेहरोत्रा

9. विकिरण चिकित्सा- स्वावलंबन की ओर बढ़ते कदम 58
   - भास्कर पॉल

✪ "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

✪ "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं ।

✪ "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा ।

'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं । परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार ली गयी है ।

टिप्पणियां

1. **सूरज : रहस्यों की खान** 62
– कु. शशी मेहरोत्रा
2. **औषधीय दृष्टि से उपयोगी : ग्वारपाठा** 63
– अरुण कुमार सिंह
3. **उच्च ऊर्जा बॉल मिलिंग के द्वारा नैनो – संरचित मिश्रधातु का संश्लेषण** 65
–जी. विजय कुमार
4. **कांचनार – एक औषधीय वृक्ष** 67
– डॉ. (श्रीमती) अनुपमा चतुर्वेदी

विज्ञान कविता

1. **सर आइजक न्यूटन** 51
– राघव शैलेंद्र कुमार सिंह

विज्ञान समाचार

– **भा. प. अ. केंद्र से** 67
– **अन्य समाचार** 70

कूछ फूल : कुछ कांटे 71

आवरण पृष्ठ पर दिये गये चित्र का विवरण. . .

यह 230 मैगावाट बिजली देने वाला दाबित भारी पानी नाभिकीय रिएक्टर के एक ईंधन चैनल हेतु 19 - ईंधन छड़ों के सम्मुचय का समरूपक है जिसे भा. प. अ. केंद्र के अभिकल्पन एवं निर्माण केंद्र ने तैयार किया है। यह संयंत्र नाभिकीय प्रतिक्रिया द्वारा एक ईंधन चैनल में उत्पन्न विद्युत शक्ति के लिए एक समरूपक का काम करता है । इसमें विद्युत शक्ति को समतुल्य ऊष्मीय शक्ति में परिवर्तन किया जाता है।

इस काम के लिए 6 मीटर लंबे 19 ऊष्मक घटक होते हैं जो मिलकर 83 मिमी व्यास के एक बेलन में रूप में समायोजित होते हैं । प्रत्येक हीटर (ऊष्मक) 16 मिमी व्यास की स्टेनलैस स्टील (SS304L) की ट्यूब है जिनमें सिरामिक गुट्टिकाएं भरी होती हैं तथा दोनों सिरों पर कॉपरका तार जुड़ा रहता है।

इस समायोजन की महत्ता इसके साइज़, विभिन्न घटकों की विशिष्टताएं तथा स्वीकार्यता के कड़े मापदंड हैं । हीलियम सरण परीक्षण एवं उच्च दाब (240 Kg/cm^2) परीक्षण भी महत्त्वपूर्ण हैं।

संपादकीय

विज्ञान शिक्षण के कुछ सामायिक पहलू

शिक्षा एक सभ्य समाज में जनसामान्य के जीवन स्तर एवं संस्कृति का आधार है अत: इसका सही होना जरूरी है। आज के बदलते परिवेश में आर्थिक प्रतियोगितात्मकता हर राष्ट्र के लिए एक चुनौती पूर्ण मुद्दा बन चुका है। सबसे विकसित राष्ट्र संयुक्त राज्य अमरीका में ही नहीं बल्कि अन्य विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में भी आज यही चिंतन चल रहा है कि भविष्य की आर्थिक संवृद्धि को बनाये रखने के लिए विज्ञान एवं इंजीनियरी का आधार किस रूप में तैयार करें। इसमें तो कोई विवाद नही है कि आर्थिक संवृद्धि के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का सुदृढ़ ढांचा जरूरी होता है। इस चिंतन से जो एक बात सामने आ रही है वह यह है कि विज्ञान एवं गणित शिक्षण – प्रशिक्षण को किस प्रकार संशोधित किया जाय ताकि वह तेजी से उभर रही प्रौद्योगिकियों, बदलती ज्ञान आधारित अर्थ व्यवस्था (Knowledge Economy) की आवश्यकताओं, वृद्ध एवं विविध जनसंख्या के प्रति संवेदनशील बनी रहे और आवश्यकतानुसार चुनौतियों का सामना करने में समर्थ रहे। भारत हाल में एक 'ज्ञान आधारित अर्थ व्यवस्था' के रूप में बड़ी तेजी से उभर रहा है जिसका उल्लेखनीय प्रभाव देश की अर्थव्यवस्था पर प्रतिलक्षित हो रहा है। इस बात को डॉ. ऐनिसा जी रेमिनेज के एक वक्तव्य से बल मिलता है। 26 अक्टूबर 2006 को न्यूयार्क में एक सम्मेलन (मीटिंग) के दौरान उन्होंने (डॉ. ऐनिसा जी. रेमिरेज) विज्ञान शिक्षा तथा वैश्विक प्रतियोगितात्मकता के परिप्रेक्ष्य में विज्ञान शिक्षा का चीन में हाल में हुई अप्रत्याशित प्रगति का उल्लेख किया। उन्होंने बताया कि चीन में हर बच्चा या तो इंजीनियर या वैज्ञानिक बनना चाहता । अभी हाल में कुछ चीन के वैज्ञानिक / प्रोफेसरों से बात के दौरान यह बात सामने आई कि, वहाँ पर भी आर्थिक प्रतियोगितात्मकता से नये पीढी प्रभावित हो रही है और वे भी प्रबंधन (Management) संबंधी व्यवसायों की ओर आकर्षित हो रहे हैं । जब कि अमरीका में आम बच्चे या तो वकील या खिलाड़ी बनने का सपना देखते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि चीन की पार्लियामेंट (जो राष्ट्रीय नीतियां बनाती हैं) में अधिकांश सदस्य विज्ञान की उच्च शिक्षा हासिल किये हुए हैं और जानते हैं कि राष्ट्र निर्माण में प्रौद्योगिकी का अहम् हाथ होता है। इसके विपरीत अमरीका के राष्ट्रीय नीति बनाने वाले या तो वकील हैं या अर्थशास्त्री। इसी प्रकार कई अन्य राष्ट्रों में भी नीतियां बनाने वाले जन प्रतिनिधि विज्ञान विषयों से न केवल अनभिज्ञ हैं परंतु उनकी मानसिकता भी अवैज्ञानिक देखी गयी है। जब जन प्रतिनिधि बनने के लिए शिक्षित होना अनिवार्य नहीं होता है तब ऐसे प्रतिनिधि भविष्य की आर्थिक संवृद्धि में क्या योगदान दे पाएंगे, इस पर एक प्रश्न चिन्ह स्वत: लग जाता है। वर्ष 2005 में भौतिकी का अंतर्राष्ट्रीय वर्ष मनाया गया जिसमें यह बात खुलकर सामने आयी कि विज्ञान में अच्छे विद्यार्थियों की रुचि दिनों दिन घटती जा रही है। यह इस बात का द्योतक है कि विज्ञान शिक्षण में कहीं न कहीं चूक हो रही है। स्कूली स्तर पर दी गयी विज्ञान एवं गणित की शिक्षा का भविष्य वैज्ञानिक एवं तकनीकी मानव समुदाय की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। यही नहीं विज्ञान एवं गणित की प्रारंभिक शिक्षा / जानकारी न केवल उन लोगों के लिए आवश्यक है जो कॉलेज स्तर पर विज्ञान को अपना प्रमुख विषय चुनते हैं, बल्कि यह सभी नागरिकों के लिए आवश्यक लगता है ताकि वे कम से कम उन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय पहलुओं को समझ सकें जिनका सीधा संबंध उनकी आम जिंदगी से रहता है। अमरीका की राष्ट्रीय विज्ञान फाउंडेशन (NSF) की जनवरी 2006 की एक रिपोर्ट में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि मजदूर आधारित निर्माण पद्धति के स्थान पर आज ज्ञान आधारित निर्माण पद्धति एवं सेवाएं प्रमुख बनती जा रही हैं। फलस्वरूप वर्तमान आर्थिक संवृद्धि के लिए यह आवश्यक हो गया है कि सभी नागरिक कारीगरी, कौशल एवं प्रवीणता का महत्व समझ पाएं। इसके लिए उन्हें न्यूनतम विज्ञान एवं इंजीनियरी का प्रशिक्षण लेना एक तरह से जरूरी हो रहा है।

कुछ वर्ष पहले किये गये एक अध्ययन के अनुसार भारत में लगभग 487 लाख स्नात्तक एवं स्नात्तकोत्तर (इनमें डिप्लोमा वाले शामिल नहीं हैं) लोग हैं। इनमें से लगभग उपलब्ध 25% ही विज्ञान के क्षेत्र से थे । उपलब्ध आकडों के आधार पर वर्ष 2000-01 में लगभग 31.0 प्रतिशत विद्यार्थियों ने स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर पर विज्ञान विषयों को चुना था। जिनकी संख्या वर्ष 2003-04 के दौरान 34.6 प्रतिशत हुई। परंतु खेदपूर्ण बात यह है कि इसका बहुत ही कम प्रतिशत (लगभग 1%) अनुसंधान कार्यों (पीएच.डी.) के लिए जाते हैं । फलस्वरूप शोध कार्यों हेतु अच्छे, समर्पित विद्यार्थियों की कमी निरंतर होती जा रही है। इसी संदर्भ में लगभग एक वर्ष पूर्व प्रो. सी. एन आर. राव (प्रधानमंत्री के प्रमुख वैज्ञानिक सलाहाकार) ने विज्ञान एवं तकनीको की वर्तामान स्थिति पर अपनी चिंता जलायी क्योंकि विज्ञान शिक्षा में कर्मठ एवं समर्पित युवाओं की संख्या निरंतर घटती जा रही है। स्पष्टत: इसका एक कारण शोध एवं विकास कार्यों तथा शिक्षा के क्षेत्र में निवेश की कमी है। भारत में एशिया–पेसेफिक क्षेत्रों के मुकाबले निवे श काफी कम है। विश्वविद्यालयों में अच्छी एवं आधुनिक सुविधाओं की कमी तथा अत्युत्तमता के केंद्रों के अभाव के कारण

युवाओं का विज्ञान के प्रति झुकाव /रुचि में कमी आना एक स्वाभाविक बात है। हालांकि प्रकाशित शोध पत्रों की संख्या 14983(1980) से 19448(2005) बढ़ी परंतु यह विश्व स्तर पर प्रकाशित शोध पत्रों के परिप्रेक्ष्य में घटा है। वास्तव में कमी का यह मान 2.9(1980)% से घटकर 1.9 (2005) प्रतिशत हो गया।

यह सुविदित है कि भारतीय संविधान में विविध सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों वाले जनसमुदाय को शिक्षा आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रावधान रखा गया है। इसके तहत भारतीय सरकार ने विभिन्न स्तरों पर शिक्षा की व्यवस्था को अपनाया है। ये हैं- प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, पौढ़ शिक्षा, तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा। आजादी के बाद से पिछले 50-60 वर्षों में इस क्षेत्र में कई कदम उठाये गये हैं, तथा नयी शिक्षा नीतियां बनायी गयी हैं। परंतु अब बदलते वैश्विक एवं प्रतियोगितात्मकता के वातावरण में इनमें परिवर्तन की आवश्यकता आ पड़ी है। भारतीय सॉफ्टवेयर विशेषज्ञोंपेशेवरों की मौलिक प्रवीणता के कारण उनकी अंतर्राष्ट्रीय मांग के साथ साथ स्वदेशी मांग की पूर्ति एवं राष्ट्र के सर्वांगीण विकास हेतु अन्य क्षेत्रों के विशेषज्ञोंपेशेवरों को तैयार करने के लिए विज्ञान शिक्षण की समुचित व्यवस्था एक चुनौती पूर्ण काम बन गया है। इसके साथ एक और सुखद बात यह है कि अधिकांश आम नागरिक भी आज शिक्षा की उपयोगिता/प्रमुखता के प्रति सजग/सचेत हो रहा है। अत: वह भी शिक्षित होने की दिशा में प्रयासरत है। इस चुनौती से निपटने के लिए न केवल सरकार बल्कि निजी निवेशकों को भी शिक्षा के क्षेत्र में अपनी भागीदारी बढ़ाने की बड़ी पहल करने की आवश्यकता है। वे इसके साथ साथ वर्तमान सूचना तकनीकी का उपयोग कर सुदूर शिक्षा कार्यक्रम (आभासी कक्षाएं, इंटरनेट शिक्षा इत्यादि) के द्वारा शिक्षण पद्धति को कारगर बना सकते हैं (संपादकीय : 'वैज्ञानिक' अक्तूबर-दिसंबर 2005)। अभी हाल में उपकुलपतियों के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में लगभग सभी आई. आई. टी. के निदेशकों ने भी आमासी कक्षाओं का समर्थन किया।

अब एक बात जो विचारणीय है, वह यह है कि किस प्रकार विद्यार्थी जो भविष्य के कर्णधार होंगें, के आरंभिक काल में उनमें विज्ञान एवं वैज्ञानिकता का बीजारोपण किया जाय। किस प्रकार शिक्षकों को इस हेतु जिम्मेदार बनाया जाय। मूलत: हर बच्चे में एक वैज्ञानिक का तत्त्व समाहित रहता है जो उसकी खोजी प्रवृति एवं तमाम जिज्ञासाओं को जन्म देता है। इसलिए ऐसा वातावरण तैयार किया जाना चाहिए जिसमें उन्हें कुछ नवीन करने की प्रेरणा मिले। यह तभी संभव है जब हम उन्हें अलग तरीके से सोचने अथवा कल्पना करने का मौका दें। उनको वैचारिकता एवं वैज्ञानिक संकल्पनाओं का सही स्वरूप बताएं जो उन्हें विज्ञान के प्रति रुचि बनाए रखने में सहायता देगा। उनकी रचनात्मक प्रवृत्ति को नया आयाम देगा। विश्व में विज्ञान शिक्षण पर हो रहे शोध कार्यों से यह स्पष्ट होता है कि विद्यार्थियों को पारंपरिक तरीकों के बदले संकल्पनात्मक पद्धति द्वारा विज्ञान के प्रति सकारात्मक समझ दी जा सकती है। इसके लिए उपलब्ध प्रगत कंप्यूटर एवं अन्य तकनीकों का प्रयोग करके विज्ञान के मौलिक नियमों की समरूपता दर्शाते हुए बढ़ाया जा सकता है। निसंदेह इसका प्रभाव अधिक लाभपूर्ण रहेगा। और इस काम के लिए आवश्यक है अच्छे प्रशिक्षित अध्यापक। दुर्भाग्यवश आज अच्छे समर्पित शिक्षकों की कमी बनी हुई है क्योंकि यह व्यवसाय/क्षेत्र समाज में उतना सम्मानजनक एवं आकर्षक नहीं रहा है। आर्थिक प्रतियोगितात्मकता का माहौल हर पहलू को पैसे के तराजू में तोलता है अतः इस दौड़ में अध्यापक भी अपनी अहम् जिम्मेदारियों से भटक रहे हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है कि शिक्षकों का समाज में उच्च स्तर स्थापित किया जाय। इस हेतु शिक्षकों का चयन उच्च मापदण्डों के आधार पर किया जाय और उन्हें उसके अनुरूप वेतन तथा सम्मान की व्यवस्था भी की जाय। साथ ही शिक्षकों को समय के साथ नवीनतम शिक्षा पद्धतियों एवं साधनों के बारे में समुचित प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए ताकि वे विद्यार्थियों को विज्ञान की संकल्पनाओं को सही एवं प्रभावी तौर पर बता सकें। शिक्षकों को खुले मन से विद्यार्थियों के साथ विचार विमर्श करना अधिक लाभकारी होगा। इससे उनके बीच एक स्वस्थ एवं सकारात्मक संबंध स्थापित हो सकेगा जो उन दोनों को आपसी सम्मान के वातावरण में शिक्षण कार्य में सहायक बनेगा। इसके साथ साथ शिक्षण व्यवसाय आकर्षक बनाया जाय ताकि सुयोग्य एवं समर्पित शिक्षक राष्ट्र निर्माण की इस अहम् जिम्मेदारी के भागीदार बन सकें।

ooo

'वैज्ञानिक' का प्रस्तुत अंक अप्रैल-सितंबर 2007 प्रतियोगिता विशेषांक है, जिसमें वर्ष 2006 में डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता में पुरस्कृत लेखों को समाहित किया गया है। कुछ अन्य लेख - टिप्पणियां-विज्ञान कविताएं भी पूर्ववत दिये गए हैं। स्तरीय लेख भेजकर पाठकों / लेखकों ने सहयोग का जो सेतु बनाया है हम उसकी सराहना करते हैं और भविष्य में उनके सहयोग की अपेक्षा रखते हैं।

- डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2006) में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

चॉकलेट : अतीत के दैवीय औषधीय पदार्थ से वर्तमान के स्वास्थ्यवर्धक खाद्य-पदार्थ तक

डॉ. राज किशोर

डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद (उ. प्र.)

चॉकलेट जैसे आधुनिक खाद्य पदार्थों का उपयोग युवा पीढ़ी में तेज़ी से बढ़ रहा है। अतएव यह समाचीन प्रतीत होता है कि 'चॉकलेट' के बारे में कुछ रोचक एवं तथ्यपूर्ण जानकारी मिले। प्रस्तुत लेख में चुलबुले चॉकलेट के आदि वृत्तांत से लेकर उसके रासायनिक तथा जैविक घटकों एवं गुणों का वर्णन बड़े ही सहज एवं आकर्षक शैली में किया गया है। औषधि एवं खाद्य पदार्थ के रूप में चॉकलेट के बारे में दी गयी जानकारी तथा मानव मस्तिष्क एवं क्रिया कलाप पर इसका प्रभाव एक वैज्ञानिक परक लेखन है।

चॉकलेट किसी स्वादिष्ट एवं मधुर खाद्य-पदार्थ, किसी डेजर्ट या किसी अन्य आनंददायी पदार्थ से भी बढ़कर एक ऐसा खाद्य पदार्थ है जिसकी अनुभूति सिर्फ इसे खाने वाले को ही हो सकती है। विश्व के किसी भी कोने में, चाहे कोई इसे कोकोआ पेय के रूप में पिये या फिर चॉकलेट बार के रूप में खाए, हर उपभोगकर्ता समान रूप से एक विशिष्ट आनंद का अनुभव करता है और इस विशिष्ट आनंद का स्रोत काकाओ (कोकोआ) वृक्ष है।

काकाओ का वानस्पतिक विवरण :

कोकोआ पेय का चॉकलेट, काकाओ वृक्ष के बीजों द्वारा तैयार किया जाता है। काकाओ वृक्ष का वनस्पतिक नाम **थियोब्रोमा काकाओ** (Thepbroma cacao) है जो वनस्पति जगत के स्टरकुलिएसी (Family-Sterculiaceae) कुल का सदस्य है। अंग्रेजी में इसे कोकोआ के नाम से जाना जाता है। काकाओ उष्ण कटिबंधीय अमरीकी प्रदेश के निचले क्षेत्रों का स्थानीय वृक्ष है। मनुष्य द्वारा काकाओ की खेती एवं उपभोग की परंपरा इतनी प्राचीन है कि संभवत: उष्ण कटिबंधीय अमरीकी प्रदेश में काकाओ जैसा कोई भी अन्य जंगली वृक्ष अब मानव उपयोग में है ही नहीं।

यह वृक्ष सामान्यत: 15-25 फुट ऊंचाई के अत्यधिक शाखाओं वाले वृक्ष होते हैं। इन वृक्षों पर 4-5 वर्ष की आयु से फल आने प्रारंभ हो जाते हैं और लगभग 12-50 वर्ष की आयु तक फल आते रहते हैं जिससे एक वर्ष में कोको शिंब (pod) की कई फसलें प्राप्त होती हैं। कोको फूल और फल वृक्षों के तनों तथा मोटी डालों पर ही लगते हैं (चित्र - 1)। कोको के फल 6-9 इंच लंबे तथा 3-4 इंच मोटे शिंब सदृश संपुट कैपशूल होते हैं जिनके आखिरी हिस्से नुकीले होते हैं। एक पॉड में 40-60 या कभी-कभी इससे भी अधिक बीज होते हैं जो पकने पर पीले या लाल-बैगनी रंग के हो जाते हैं और फलों के सूख जाने पर ये बीज भूरे रंग के हो जाते हैं। भूरे रंग के ये बीज जिन्हें

चित्र - 1

'काकाओ बीन' कहा जाता है, चॉकलेट या काकाओ पेय के निर्माण के मुख्य स्रोत होते हैं।

काकाओ पेय तथा चॉकलेट की कथा पूर्ववर्ती ओलमेक्स (Olmecs) के साथ प्रारंभ होती है जो मीसो अमरीका (Mesoamerica) में आज से लगभग 3000 वर्ष पूर्व रहा करते थे। यह कथा 16वीं शताब्दी में मीसो अमरीका पर स्पेनी जीत और केंद्रीय अमरीका (Central America) में उनके बसने के साथ आगे बढ़ी। इस जीत की खुशी में तत्कालीन नरेश मोंटेजुमा (Montezuma) की सभा में कोर्टिस (Cortes) एवं उनके सैनिकों को राजकीय सम्मान के रूप में झागदार काकाओ पेय प्रस्तुत किया गया था। 17वीं सदी के उत्तरार्द्ध और 17वीं सदी के पूर्वार्ध में चॉकलेट और इससे बने पेय पदार्थों के यूरोप और दक्षिणी अमरीका में प्रचलित होने के बारे में अनेकानेक कहानियां और मिथक जुड़े हुए हैं, लेकिन आज इक्कीसवीं सदी में उपभोक्ता चॉकलेट से बने पेय पदार्थों को एक खाद्य-पदार्थ के रूप में या एक डेजर्ट के रूप में उपभोग करते हैं।

चॉकलेट का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक वृत्तांत :

प्राचीन माया सभ्यता से संबंधित पांडुलिपियों में काकाओ एक दैवीय उत्पत्ति माना गया है और मानव को यह एक ईश्वर प्रदत्त उपहार के रूप में प्राप्त हुआ है। माया सभ्यता के अनुसार संसार के रचयिता देवों में से एक-जूकेन (Xmucane) द्वारा नौ विभिन्न प्रकार के पेय (बिवरेजों-beverages) का आविष्कार किया गया और इन्हीं से मनुष्यों की रचना की, जो अपना भरण-पोषण करने में अपने आप में स्वयं सक्षम थे। इन नौ बिवरेजों में से जूकेन ने तीन बेवरिज काकाओ और मक्के से बनाए। इतिहासविदों के अनुसार काकाओ बीन से बनाए जाने वाले खाद्य-पदार्थ का चॉकलेट से मिलता-जुलता नामकरण ओल्मेक सभ्यता के निवासियों द्वारा दिया गया जो कालांतर में माया सभ्यता तक पहुंचा। काकाओं वृक्ष से प्राप्त काकाओ बीन को उसकी गुणवत्ता के आधार पर अजटेक निवासियों द्वारा ही सर्वप्रथम दो मुख्य किस्मों में वर्गीकृत किया गया और इन्हें अलग-अलग नाम भी दिया गया। उच्च किस्म के बीजों को 'कुआहकाकाहुआटल' (Quauhcacahuatl) तथा निम्न किस्म के बीजों को 'टकाकाहुआटल' (Tlacacahuatl) नाम दिया गया। उच्च किस्म के बीजों को उस समय चॉकलेट जैसा कोई खाद्य-पदार्थ बनाने के साथ-साथ वस्तु विनिमय के लिए मुद्रा के रूप में भी उपयोग में लाया जाता था जबकि निम्न किस्म के बीजों का उपयोग केवल बिवरेज बनाने के लिए ही किया जाता था। अंग्रेजी में प्रयुक्त होने वाला शब्द 'काकाओ' भाषा विज्ञान की दृष्टि से मुख्य रूप से अजटेक भाषा नाहुआटल (Nahuatl) के 'काकाहुआटल' (Cacahuatl) या 'जोजोकेटल (Xoxocatl) से व्युत्पन्न किया गया है जिसके शाब्दिक अर्थ हैं- ऐसा बिवरेज जिसे काकाओ और पानी के मिश्रण से तैयार किया जाता है।

माया सभ्यता के बाद टोलटेक्स (Toltecs) आप्रवासियों के साथ-साथ चॉकलेट मेक्सिको पहुंची। टोल्टेक्स सभ्यता के पवित्र पुस्तकों में वर्णित गाथा के अनुसार टोल्टेक सभ्यता के ईश्वर 'क्वेटजालकोटल' (Quetzalcoatl) ने पृथ्वी पर प्रथम काकाओ वृक्ष को 'टुला' (Tula) क्षेत्र में रहने वाले अच्छे और मेहनतकश मनुष्यों के सम्मान में टुला में रोपित किया। 14वीं शताब्दी में टोल्टेक्स पर मेक्सिका (अजटेक्स) (Mexica/Aztecs) का आधिपत्य हो गया। 16वीं शताब्दी के दौरान मेक्सिका अप्रवासियों ने पूर्ववर्ती टोल्टेक्स की राजधानी 'टिनाचटिटलॉन' (Tinochtitlan) को एक आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक रूप से समृद्ध राजधानी के रूप में विकसित किया। इतिहासवेत्ताओं के अनुसार ढाई से साढ़े तीन लाख जनसंख्या के साथ टिनोचटिटलॉन तत्कालीन विश्व के सबसे बड़े शहरों में से एक था।

काकाओ से चॉकलेट पेय बनाने की तकनीकी टोलटेक्स से मेक्सिका/अजटेक्सवासियों को मिली। इन्हें चॉकलेट से बने पेय पदार्थ बहुत प्रिय थे। वस्तुतः मेक्सिका में उस समय तक चॉकलेट से बने पेय पदार्थ केवल विशिष्ट व्यक्तियों एवं सैनिकों को ही मिल सकते थे। इन विशिष्ट व्यक्तियों में राजपुरुष, उच्च पदासीन राजकीय कर्मचारी, सैन्य अधिकारी, पुजारी, विशिष्ट योद्धा एवं वीरतापूर्ण कार्य करने वाले सैन्य सिपाही ही आते थे । यहां तक कि कभी-कभी युद्धों में शत्रु पक्ष के पकड़े गये वीर सिपाहियों को भी उनकी बलि देने के पूर्व चॉकलेट पेय प्रदान किया जाता था। मेक्सिका निवासियों का यह विश्वास था कि काकाओ /चॉकलेट बिवरेज उन्मादक एवं उद्दीपनकारी होते हैं, इसलिए इसे स्त्रियों एवं बच्चों को नहीं दिया जाना चाहिए।

लेकिन मेक्सिकाओं का प्रभुत्व लंबे समय तक टोलटेक्स पर नहीं रह सका। जिस प्रकार मेक्सिकाओं ने टोलटेक्स निवासियों के ऊपर अपना आधिपत्य जमाया था, समय चक्र घूमने के साथ ठीक उसी प्रकार

स्पेनवासियों ने मेक्सिका के ऊपर अधिकार जमा लिया। स्पेनिश आक्रांता हेरनान्डो कोर्टिस (Hernando Cortes) अपनी सेनाओं के साथ आज के आधुनिक वेटा क्रुज के पास वर्ष 1519 में उतरा और अपनी जहाजों को वहीं जलाने के पश्चात मेक्सिका की राजधानी टिनोचटिटलॉन की ओर कूच कर दिया। राजधानी के बाहर मेक्सिका के तत्कालीन राजा मोन्टेजुमा द्वारा कोर्टिस का स्वागत किया गया (चित्र-2)। कोर्टिस एवं उसकी सेना के अनेक अधिकारियों द्वारा मेक्सिका विजय की इस ऐतिहासिक घटना का संपूर्ण वर्णन अपनी डायरियों में लिखा गया। इन वर्णनों के साथ-साथ राजधानी में उस समय मौजूद काकाओ के व्यापारियों द्वारा लिखित वर्णनों में भी मेक्सिका विजय की इस घटना का उल्लेख मिलता है।

इन सभी वर्णनों में इस तथ्य का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि कोर्टिस एवं उसके सैनिक अधिकारियों एवं सैनिकों के सम्मान में आयोजित भोज में चॉकलेट पेय विशेष रूप से लगातार परोसी जाती रही। बर्नाल डियाज डेल कैस्टिलो 4(Bernal Diaz del Castillo) द्वारा वर्ष 1560 में लिखित उपरोक्त रक्तहीन विजय गाथा में यह वर्णित है कि, ''समय-समय पर मोन्टेजुमा के रक्षक सोने से निर्मित कपों में कोकोआ पौधे से निर्मित एक ऐसा पेय कोर्टिस के सैनिकों के लिए लाते थे जिसके बारे में वो सैनिकों को यह बताते थे कि वे इस पेय को अपनी पत्नियों के पास जाने से पूर्व पीते हैं।''

मेक्सिको के प्राचीन ग्रंथों में चॉकलेट के औषधीय गुणों का वर्णन :

यद्यपि प्राचीन स्पेनिश ग्रंथों में चॉकलेट के औषधीय उपभोग संबंधी कोई वर्णन नहीं मिलता है लेकिन मेक्सिका के अनेक प्राचीन ग्रंथों में काकाओ एवं चॉकलेट के औषधीय गुणों का वर्णन किया गया। इन प्राचीन पांडुलिपियों में से 'कोडेक्स बारबेरिनो'(Codex Barberini) एवं 'लैटिन 124' (Latin 124) प्रमुख हैं और इन्हें सामान्यत: 'बाडिएनस पांडुलिपि' (Badianus manuscript-1552) एवं 'फ्लोरेंटाइन कोडेक्स' (Florentine Codex-1590) के नाम से जाना जाता है। बाडिएनस पांडुलिपि नाहुआटल/अजटेक एवं लैटिन, दोनों भाषाओं में लिखी गई है। इस पांडुलिपि में तत्कालीन मेक्सिका के केंद्रीय घाटी में पायी जाने वाली एक सौ से अधिक रोग-व्याधियों एवं उनकी चिकित्सा का वर्णन है। इस पांडुलिपि में औषधीय उपयोग में आने वाले अन्य पौधों के साथ काकाओ वृक्ष का एक आकर्षक रंगीन चित्र (चित्र-3) भी दिया गया है। पांडुलिपि के एक अंश में इस तथ्य का भी वर्णन किया गया है कि मेक्सिका के तत्कालीन राजकीय प्रशासकों को थकान मुक्त करने के लिए उनके स्नान करने के सुगंधित टबों में किस प्रकार काकाओं के फूल मिलाये जाते थे।

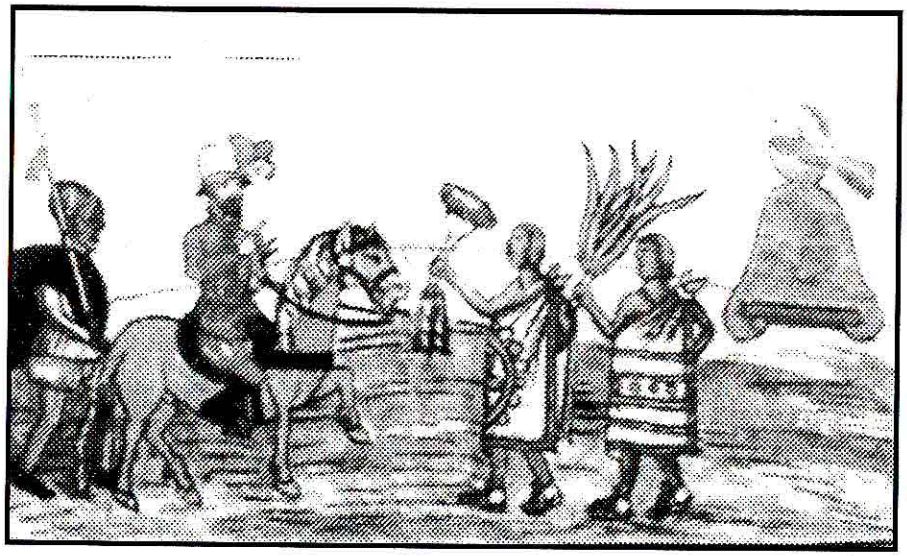

चित्र - 2

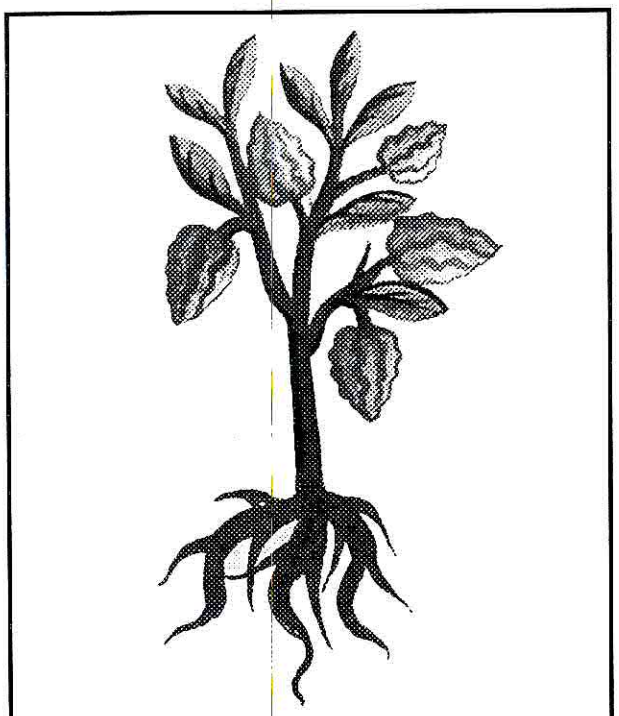

चित्र – 3

'फ्लोरेंटाइन कोडेक्स' को बरनारडिनो डि साहागुन (Bernardino de Sahagun) नाम के एक पुजारी द्वारा संकलित किया गया था जो मेक्सिको (न्यू स्पेन) में वर्ष 1529 में पहुंचा था। इस ग्रंथ में संकलित सूचनाएं तत्कालीन मेक्सिको समाज में चिकित्सा से जुड़े चॉकलेट के चिकित्सकीय इतिहास को समझने में अत्यंत ही उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है। इस पांडुलिपि में इस तथ्य का उल्लेख है कि मेक्सिका वासियों को बिना भुने हुए काकाओ बीन से निर्मित पेय को अत्यधिक मात्रा में पीने के लिए मना किया जाता था जबकि इसे संतुलित मात्रा में पीने वालों की प्रशंसा भी की जाती थी। पांडुलिपि में यह भी बताया गया है कि हरे काकाओ बीन से निर्मित पेय को अत्यधिक मात्रा में पीने से यह पीने वाले को भ्रमित और विक्षिप्त कर देती है। लेकिन इसे संतुलित मात्रा में उपयोग करने वाला खुद को तरो-ताजा और शक्ति से परिपूर्ण महसूस करता है। पांडुलिपि के एक अन्य अध्याय में इस तथ्य का वर्णन है कि खराब या तीखे स्वाद वाली विभिन्न औषधियों के स्वाद को दबाने या मधुर बनाने के लिए काकाओ बीन को औषधीय पदार्थों में भी मिलाया जाता था। पांडुलिपि के एक अन्य वर्णन के अनुसार उस समय खूनी दस्त की रोकथाम के लिए उपलब्ध एक औषधि जिसे 'क्यूनामेटली' (Quinamately) के नाम से जाना जाता था, को चॉकलेट के साथ मिलाकर रोगियों को दिया जाता था।

चॉकलेट का यूरोप में आगमन :

यद्यपि वर्तमान समय में बहुत सी पुस्तकें एवं अन्य लिखित सामग्रियों तथा अनेक वेबसाइटस् चॉकलेट के यूरोप में प्रवेश से संबंधित एक निश्चित वर्ष एवं विशिष्ट घटना का उल्लेख करते हैं। लेकिन खाद्य इतिहासविद अभी तक इस बात पर एक मत नहीं हैं और यह भी वर्णन केवल अटकलों तक ही सीमित है।

यूरोप में चॉकलेट का प्रवेश संभवत: एक स्पेनिश अदालत के माध्यम से वर्ष 1544 में हुआ जब प्रिंस फिलिप से मुलाकात के लिए आए डोमिनिकन भिक्षु अपने साथ भेंट के तौर पर माया समाज की विशिष्ट वस्तुएं लाए जिसमें चॉकलेट भी थी। परंतु यह वर्णन रूपक कथा ज्यादा और वास्तविक कम लगता है।

एक अन्य वर्णन के अनुसार स्पेनवासियों के मेक्सिको में आने के बाद चॉकलेट के खाद्य-पदार्थ के रूप में एवं औषधीय उपयोगों की जानकारी, मेक्सिको से स्पेन, फ्रांस, इंग्लैंड होते हुए पश्चिमी यूरोप के अन्य देशों में पहुंची तथा सेंट ऑगस्टीन, फ्लोरिडा में हुए स्पेनी हस्तांतरण के द्वारा संभवत: चॉकलेट उत्तरी अमरीका भी पहुंच गयी। इस प्रकार संपूर्ण यूरोप में चॉकलेट को एक विदेशी बिवरेज के रूप में ग्रहण किया गया और तत्कालीन समाज में प्रचलित पेयों तथा चाय एवं काफी की तुलना में उपभोक्ताओं ने इस गाढ़े भूरे रंग के मादक पेय के प्रति अपनी चाहत एवं स्वाद को विकसित कर इसे अपने दैनिक खान-पान का एक प्रमुख अंग बना लिया। इंग्लैंड निवासियों को चॉकलेट पेय इतना भा गया कि इंग्लैंड में जगह-जगह 'चॉकलेट हाउस' खुल गए और ये इतने अधिक लोकप्रिय हो गये कि उन चॉकलेट हाउसों में तत्कालीन समाज के धनी और शक्तिशाली लोग बैठकर चॉकलेट पेय के गरमा-गर्म कपों के साथ तत्कालीन राजनीति एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर बहस किया करते थे (चित्र-4)। इतना ही नहीं, हाईस्ट्रीट, आक्सफोर्ड में स्थित 'क्विन्स लेन कॉफी हाउस ने वर्ष 1650 में कॉफी के साथ-साथ चॉकलेट पेय की बिक्री शुरू कर दी और इस कॉफी हाउस में आज भी दोनों बिवरेज पेयों की बिक्री होती है।

औषधि एवं खाद्य-पदार्थ के रूप में चॉकलेट :

16वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी के बीच के अनेक यूरोपीय यात्रा वृतांतों एवं चिकित्सा से संबंधित ग्रंथों में चॉकलेट के औषधीय गुणों एवं अन्य अच्छाइयों के वर्णन पढ़ने को मिलते हैं। 'लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस' वाशिंगटन, डी.सी.; ब्रिटिशि संग्रहालय तथा कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय

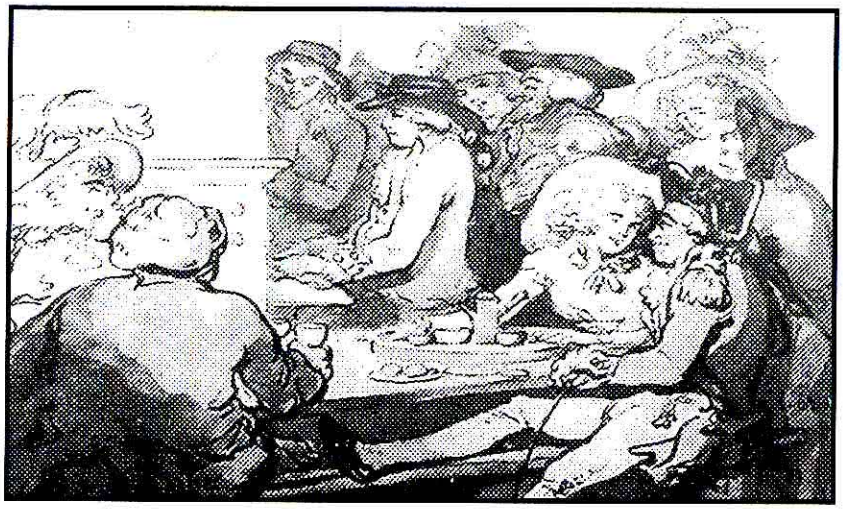

चित्र – 4

के पुस्तकालयों में रखे विभिन्न ग्रंथों, प्राचीन पुस्तकों तथा मेक्सिको, स्पेन एवं अन्य स्थानों के अभिलेखागारों में रखे हुए हस्तलिखित पांडुलिपियों के अनुवाद के उपरान्त शोधकर्ता लुईस ई ग्रिवेट्टी एवं उनकी टीम के सदस्यों द्वारा चॉकलेट के सौ से अधिक ऐसे उपयोगों की जानकारी प्राप्त हुई है जिन्हें विगत 475 वर्षों के दौरान मनुष्य के विभिन्न रोगों की चिकित्सा के लिए प्रयोग में लाया जाता रहा है। इनमें से कुछ प्रमुख वर्णन निम्नवत हैं :

1. फ्रान्सिसको हरनानडेज (Francisco Hernandez)

फ्रान्सिसको द्वारा वर्ष 1577 में लिखित वर्णन में बताया गया है कि बिवरेज के रूप में तैयार किया गया काकाओ पेस्ट बुखार तथा यकृत के विभिन्न रोगों के निदान के लिए प्रयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त भुने हुए काकाओ बीन्स को पीसकर रेजिन के साथ मिलाकर दस्त की औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता था। चॉकलेट बिवरेज को दुबले-पतले व्यक्तियों को मोटा बनाने के लिए औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता था।

2. ऑगस्टीन फरफान (Augustin Farfan)

ऑगस्टीन द्वारा वर्ष 1592 में लिखित वर्णन के अनुसार मेक्सिकावासी चॉकलेट में मिर्च, रूबर्ब (रेवत चीनी) तथा वनीला को मिलाकर एक पेय तैयार करते थे जिसे वो एक शक्तिशाली विरेचक एवं मृदुरेचक के रूप में प्रयोग करते थे।

3. जोश डि अकोस्टा (Jose de Acosta)

वर्ष 1604 में अकोस्टा द्वारा लिखित वर्णन के अनुसार तत्कालीन समाज में पेट से संबंधित विभिन्न रोगों के उपचार के लिए चॉकलेट खाने का प्रचलन था और पेय के रूप में मिर्च मिलाकर चॉकलेट पेय तैयार की जाती थी।

4. सान्टियागो डि वालवरडे तुरिसिज (Santiago de Valverde Turices)

सान्टियागो द्वारा वर्ष 1624 में लिखित वर्णन के अनुसार सीने से संबंधित रोगों के उपचार के लिए लोग अत्यधिक मात्रा में चॉकलेट पीते थे जबकि पेट से संबंधित रोग होने पर लोग अल्प मात्रा में चॉकलेट पीते थे।

5. कालमेनेरो डि लेडेस्मा (Colmenero de Ledesma)

लेडेस्मा द्वारा वर्ष 1631 में लिखित वर्णन के अनुसार काकाओ उपभोगकर्ताओं के स्वास्थ्य सुरक्षित बनाए रखता है, उन्हे मोटापा प्रदान करता है तथा चेहरे की बदसूरती को दूर करके रंग-रूप में निखार लाता है जिससे चेहरा आकर्षक हो जाता है। उनके अनुसार चॉकलेट निर्मित पेय पीने से आदमी में प्यार के लक्षण प्रकट होने लगते हैं, स्त्रियों को गर्भधारण तथा प्रसव सुगमता से होता है। लेडेस्मा के अनुसार चॉकलेट का उपभोग पाचन क्रिया को भी ठीक रखता है तथा यह क्षय रोग का निदान कर देता है।

6. थॉमस गागे (Thomas Gage)

थॉमस गागे ने वर्ष 1648 में एक औषधीय चॉकलेट का वर्णन किया है जो काली मिर्च मिलाकर तैयार की जाती थी और इसे 'कोल्ड लीवर' रोग के निदान के लिए रोगियों को औषधि के रूप में दी जाती थी। इसी प्रकार गुर्दे के रोगों के

प्रभावी निदान के लिए दालचीनी मिलाकर एक विशेष प्रकार की चॉकलेट तैयार की जाती थी। इस चॉकलेट को खाने से मूत्र प्रवाह बढ़ जाने का वर्णन है।

7. हेनरी स्टब्ब (Henry Stubbe)

वर्ष 1662 में स्टब्ब द्वारा लिखित वर्णन के अनुसार दिन भर की कड़ी मेहनत और व्यापारिक भागम-भाग से उपजी थकान को मिटाने के लिए दिन में एक-दो बार चॉकलेट पेय अवश्य पीना चाहिए। हेनरी के अनुसार 'फायर आफ सेंट एन्थोनी' रोग, जिसे 'अरगट विषाक्तता' भी कहते हैं, के निदान के लिए काकाओ तेल का उपभोग एक प्रभावी चिकित्सा विधि है। स्टब्ब ने यह भी लिखा है कि जमैका मिर्च के साथ मिलाकर तैयार की गई चॉकलेट का काढ़ा स्त्रियों में ऋतु-चक्र की अनियमितताओं को दूर करने के लिए उत्तम औषधि है। इसी के साथ-साथ वनीला मिली चॉकलेट हृदय को ताकतवर बनाती है तथा पाचन-तंत्र को स्वस्थ रखती है।

8. विलियम हगेस (William Hughes)

हगेस द्वारा वर्ष 1672 में लिखित वर्णन के अनुसार चॉकलेट शरीर को पोषकता प्रदान करती है तथा इसे खाने से अच्छी नींद आती है। समुद्री जहाजों में काफी दिनों तक सफर करने वाले ऐसे नाविक जिन्हे बहुत दिनों तक ताजा भोजन तथा सब्जियां आदि खाने को नहीं मिलती हैं उन्हें स्कर्वी जैसा रोग हो जाता है जिससे शरीर में चकत्ते पड़ जाते हैं और सूजन आ जाती है तथा ट्यूमर भी बन जाता है। हगेस के अनुसार यह रोग चॉकलेट के नियमित सेवन से दूर हो जाता है। इसी के साथ-साथ दालचीनी या नटमेग मिलाकर बनायी गए चॉकलेट को पीने से सर्दी के कारण शरीर में बनने वाले कफ को दूर किया जा सकता है।

इसी प्रकार सिल्वेस्ट्रे डुफोर (1685), निकालेस डि बेगनी (1687), डि क्यूलस (1718), एन्टोनियो लवेडान (1796), ब्रिलैट-सावारिन (1825), तथा अगस्ट सेंट-एरोमैन (1846) आदि ने भी चॉकलेट तथा चॉकलेट से बनी बिवरेज को हर उम्र के व्यक्तियों के स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद बताया है और यहां तक कहा है कि चॉकलेट खाने से मनुष्य लम्बी उम्र प्राप्त करता है।

सेंट-एरोमैन ने चॉकलेट पर एक मोनोग्राफ भी लिखा है जिसमें उन्होंने चॉकलेट और इस से बनने वाले विभिन्न खाद्य-पदार्थों का भी वर्णन किया है। अपने मोनोग्राफ में उन्होंने स्पेनिश चॉकलेट के एक ऐसे स्वरूप का वर्णन किया है जिसे 'अर्थ पिस्टाचियो' के (earth pistachio) जड़ों की गांठों को मिलाकर बनाया जाता है। स्पेनिश चॉकलेट का यह 'अर्थ पिस्टाचियो' और कुछ नहीं बल्कि मूंगफली है जिसका वनस्पति शास्त्रीय नाम 'अरेकिस हाइपोजिया' (Arachis hypogea) है। यद्यपि सेंट-एरोमैन द्वारा चॉकलेट को एक औषधि के रूप में या एक खाद्य पदार्थ के रूप में मूंगफली से मिश्रित करने का वर्णन किया गया है परंतु कमोबेश चॉकलेट और मूंगफली का यह ब्लेंड आज भी वैश्विक स्तर पर करोड़ों लोगों की पसंद बना हुआ है।

यद्यपि पिछली सदियों में 'अल्फा-टू-ओमेगा' (alpha to omega) रोगों (एनीमिया, एन्जाइना, अस्थमा, वास्टिंग तथा पेट के कीड़े से लेकर शारीरिक कमजोरी तक) के लिए चिकित्सकों द्वारा अपने रोगियों को चॉकलेट औषधि के रूप में दी जाती रही है परंतु औषधि के रूप में चॉकलेट का प्रयोग काफी विवादास्पद भी रहा है। 21वीं सदी में आज चिकित्सक इस तथ्य को मानने से स्पष्ट रूप से इन्कार करते हैं कि चॉकलेट कैंसर, गठिया, पीलिया, आर्थराइटिस, स्कर्वी, सिफिलिस, अल्फा-टू-ओमेगा रोगों या सांप डसनें में औषधि के रूप में कार्य करती हैं। परंतु साथ ही वे यह भी स्वीकार करते हैं कि विभिन्न रोगों द्वारा उत्पन्न हुई विभिन्न शारीरिक जटिलताओं को दूर करने में चॉकलेट काफी प्रभावी पायी गयी है।

चॉकलेट का वैश्वीकरण :

वैश्विक स्तर पर नित्य-प्रति चॉकलेट की बढ़ती मांग ने यह सिद्ध कर दिया है कि चॉकलेट अब विश्व के सभी देशों में एक बेवरेज तथा स्वादिष्ट एवं मधुर खाद्य-पदार्थ के रूप में समाज के हर वर्ग में समान रूप से लोकप्रिय हो चुकी है। चॉकलेट की इसी लोकप्रियता को देखते हुए हाल के कुछ वर्षों में चॉकलेट के इतिहास, चॉकलेट विषयक वानस्पतिक एवं अन्य जानकारियां तथा चिकित्सकीय एवं पोषणीय गुणों पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यही नहीं, चॉकलेट की इसी लोकप्रियता को भुनाने के लिए 1 जुलाई 2005 तक संपूर्ण विश्व में चॉकलेट के ऊपर लगभग 2 करोड़ 30 लाख वेब साइट्स भी बनायी जा चुकी हैं। यद्यपि इन सभी वेब साइट्स में से कुछ ही ऐसी हैं जो चॉकलेट के बारे में सही जानकारी प्रदान करती है।

जबकि अन्य अधिकांश वेब साइट्स या तो परीकथाओं की तरह हैं या फिर एक-दूसरे की नकल मात्र। इन वेब साइट्स में से कुछ में चॉकलेट से जुड़े विज्ञापनों पर

भी रोचक जानकारियां एवं विज्ञापनों के चित्र दिए गए हैं (चित्र-5)। इन वेब साइट्स में दी गयी विभिन्न प्रकार की जानकारियों को देखने से यह पता चलता है कि संपूर्ण विश्व की विभिन्न सांस्कृतियों के अनेक पहलुओं में चॉकलेट किस प्रकार लोगों को एक दूसरे से जोड़ने का कार्य कर रही है। क्या पूरब, क्या पश्चिम और क्या उत्तर, क्या दक्षिण - संपूर्ण यूरोप से लेकर संपूर्ण एशिया तक तथा संपूर्ण यूरेशिया में मध्ययुगीन काल से लेकर आज की 21वीं शताब्दी तक चॉकलेट करोड़ों लोगों के जीवन, समाज और उनकी परंपराओं से ऐसे जुड़ गयी है कि अब उसे इनसे अलग करना असंभव नहीं तो दुरूह अवश्य है।

मेक्सिको में 31 अक्तूबर से 2 नवंबर तक 'मृतकों का दिन' (Dia de la Muertos) नामक एक समारोह मनाया जाता है। इस समारोह में मेक्सिकन परिवारों के सांस्कृतिक/सामाजिक जीवन में चॉकलेट एक केंद्रीय भूमिका अदा करती है। मृतकों के प्रति अपनी श्रद्धा एवं सम्मान प्रकट करने के इस समारोह को 'गुएलागुएटजा' (guelaguetza/reciprocity) के नाम से जाना जाता है। इस अवसर पर सभी मेक्सिकन परिवार चॉकलेट के लड्डू, छोटी-छोटी बर्फियां, गर्म बिवरेज (पेय) आदि बनाकर उन्हें घरों में विशेष मेजों, जिन्हें अल्टार्स/आफरेन्डास (altars/ofrendas) कहते हैं, पर सजाकर या कब्रिस्तानों में सजाकर मृतकों को अर्पित करते हैं। इस समारोह के बाद इन खाद्य-पदार्थों को सभी लोग एक-दूसरे को उपहार स्वरूप भेंट करते हैं।

चॉकलेट सिर्फ एक खाद्य-पदार्थ है या मादक पदार्थ भी :

अमरीकी वाणिज्य विभाग द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार औसत अमरीकी प्रतिवर्ष लगभग 4.9 किलो चॉकलेट खा जाता है जबकि स्विटजरलैंड में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष चॉकलेट उपभोग की मात्रा 11.6 किलो है जो विश्व का एक रिकार्ड है। हालांकि इसमें वहां गए पर्यटकों द्वारा चॉकलेट के खरीद की मात्रा भी शामिल है। अमरीका और विशेषकर दक्षिणी अमरीकी स्त्रियों को वहां उपलब्ध सभी खाद्य-पदार्थों की तुलना में चॉकलेट के प्रति प्रबल आकर्षण होता है। चॉकलेट की सुगंध एवं स्वाद इतना अद्भुत होता है कि बड़े से बड़ा अनुशासित व्यक्ति भी इसके मोहपाश से बच नहीं पाता है। लेकिन सबसे बड़ा सवाल है कि चॉकलेट में ऐसा क्या है जो इसके आकर्षण से कोई भी बच नहीं पाता है ? इस में वो कौन सा रहस्य है

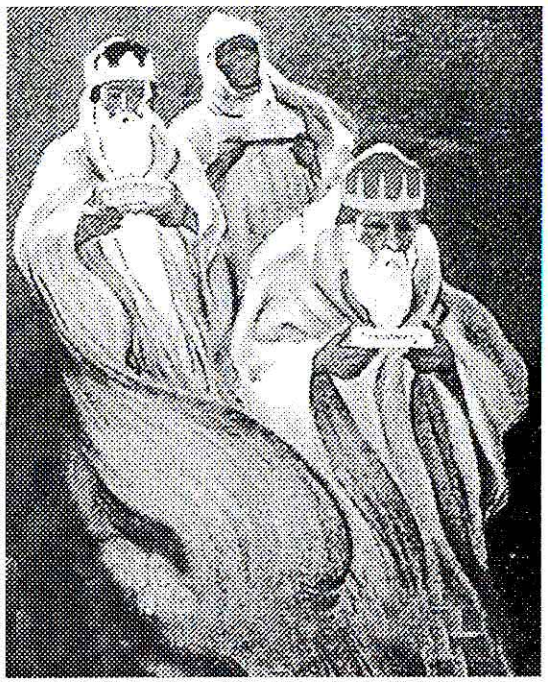

चित्र - 5

जिसने इसको पूरे विश्व में इतना प्रलोभनकारी बना रखा है। वैश्विक स्तर पर समय-समय पर अनेक खाद्य-विज्ञानियों, वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं द्वारा किए गए शोधों से यह तथ्य सामने आया है कि चॉकलेट खाने से मनो-मस्तिष्क में एक अद्भुत एवं आश्चर्यजनक अनुभूति होती है।

चॉकलेट को न तो वनस्पति आधारित चार मुख्य आधारभूत खाद्य-पदार्थों (यथा, विभिन्न प्रकार के खाद्यान्न, सब्जियां, फल एवं दालें) में वर्गीकृत किया जा सकता है और न ही इसे औषधि वर्ग में रखा जा सकता है लेकिन यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि इस में इन दोनों वर्गों के गुण पाए जाते हैं।

वैज्ञानिक भाषा में किसी भी भोज्य पदार्थ को इन शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है - "कोई भी ऐसा खाद्य-पदार्थ जिसको ग्रहण करने और पचाने के बाद किसी भी वनस्पति या जीव-जंतु को जीवित रहने, वृद्धि करने तथा शारीरिक ऊतकों और कोशिकाओं के नव-निर्माण एवं मरम्मत के लिए आवश्यक पोषण एवं ऊर्जा प्राप्त होती रहे" जबकि कोई भी औषधि एक ऐसा खाद्य पदार्थ है जिसे औषधि के रूप में या फिर एक रासायनिक के रूप में उपभोग में लाया जाता हो," यथा, कोई भी मादक या हलूसिनोजनिक पदार्थ जो शरीर के केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र को प्रभावित करता हो या फिर व्यवहार में परिवर्तन लाता हो (अधिकांशत: लती या आदी हो जाने की स्थिति)।

इन सबसे बिल्कुल अलग, ''चॉकलेट को एक पेस्ट, पाउडर, सीरप या ऐसे एक छोटे टुकड़े के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसे काकाओ बीजों को भूनने एवं पीसने के बाद तैयार किया जाता है।'' इसमें पोषक तत्त्व विद्यमान होते हैं और उपभोक्ता को यह पोषकता प्रदान करती है जिसके कारण खाद्य-पदार्थ की परिभाषा में यह खरी उतरती है। चॉकलेट प्रेमी इसको 'लव ड्रग' (love drug), ''विश्व का आठवां आश्चर्य'', 'देवताओं का खाद्य-पदार्थ', 'खुशियों की गुप्त औषधि' (the secret drug of happiness) जैसे शब्दों में परिभाषित करते हैं।

वैश्विक स्तर पर इस की बढ़ती लोकप्रियता तथा कुछ हद तक दीवानापन और उसके अनेक पहलुओं के रहस्यों को उजागर करने के लिए दुनिया भर में अनेक स्तरों पर निरंतर शोध जारी है। अब तक की गयी शोधों के अनुसार चॉकलेट में जैविक रूप से सक्रिय अनेक ऐसे यौगिक पाए जाते हैं जो उपभोक्ता के मनो-मस्तिष्क को उत्प्रेरित एवं उद्देलित करने तथा सुखानुभूति उत्पन्न करने में पूर्णतया सक्षम होते हैं। इन जैव रसायनिक यौगिकों में कन्नाबिनायॅड सदृश फैटी-अम्ल होते हैं जो संरचना में मैरीजुआना में पाये जाने वाले क्रियाशील अणु-ट्रेटाहाइड्रोकन्नाबिनॉल (tetrahydrocannabinol) तथा कैफीन में पाए जाने वाले अणु मेथिलजैन्थीन्स (Methylxanthines) के सदृश होते हैं। संपूर्ण विश्व में लती बना देने के गुणों वाली एक औषधि के रूप में मेथिलजैन्थीन्स का अत्यधिक उपभोग होता है। चॉकलेट में अल्कालॉयड भी विद्यमान होते हैंजो शराब में पाए जाने वाले अल्कालायड 'टेट्राहाइड्रो-बीटा-कार्बोलीन्स) (tetrahydro-beta-carbolines) के सदृश होते हैं। शराब पीने वालों को शराब का लती बनाने के लिए यही अणु जिम्मेदार होता है। इनके अतिरिक्त चॉकलेट में बायोजनिक अमीन्स जिन्हे 'फेनिल-इथिलअमीन (phenyl-ethylamine)' कहते हैं, भी पाये जाते हैं जो उपभोक्ताओं में प्यार की अनुभूति जैसा अहसास उत्पन्न करते हैं। फेनिल-इथिलअमीन को 'लव ड्रग भी कहते हैं क्योंकि यह रसायन उपभोक्ता में शारीरिक क्रियात्मकता तथा मनोवैज्ञानिक स्तर पर ऐसी अनुभूति उत्पन्न कर देता है, ''जैसा कि किसी के मन में तब होता है जब उसे किसी से प्यार हो जाता है।''

यद्यपि ये सभी औषधीय यौगिक चॉकलेट में बहुत कम मात्रा में विद्यमान होते हैं लेकिन इसे खाने वालों में इन सभी यौगिकों का ऐसा सामूहिक प्रभाव पड़ता है जो उसके शरीर की सारी ज्ञानेंद्रियों को अभीभूत कर देता है। चॉकलेट खाने के बाद उपभोक्ता के शरीर के विभिन्न स्थानों तथा मस्तिष्क पर पड़ने वाले संयुक्त मनोवैज्ञानिक एवं औषधीय प्रभाव पोषण-विज्ञानियों के लिए एक गहन शोध का विषय है।

चॉकलेट के संवेदी गुण तथा इन्डोर्फिन प्रभाव :

इन्डोर्फिन प्रभाव उस स्थिति को कहते हैं जब मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र में कई हारमोन्स के एक समूह का निर्माण होता है और शरीर पर संयुक्त रूप से इनका पीड़ानाशक प्रभाव पड़ता है। चॉकलेट उत्पादन की ललक के पीछे इस की मिठास इसका अद्भुत स्वाद, इसकी बनावट तथा इसके सुग्राही गुणों का होना है। इसमें अत्यधिक मात्रा में शर्करा और कोकोआ मक्खन के रूप में वसा होती है। कोकोआ मक्खन मानव शरीर के तापक्रम पर पिघलने लगती है और इसका यही गुण चॉकलेट को संपूर्ण विश्व में समान रूप से सबसे अधिक पसंद किए जाने वाले खाद्य-पदार्थ के रूप में स्थापित करता है। इसके अतिरिक्त चॉकलेट में 400 से अधिक किस्म के विशिष्ट प्रकार के सुगंध एवं स्वाद वाले यौगिक भी पाये जाते हैं जो किसी भी अन्य खाद्य-पदार्थ में पाये जाने वाले सुगंध एवं स्वाद वाले यौगिकों से लगभग दो गुना हैं।

चॉकलेट में लगभग 50 प्रतिशत वसा और लगभग 50 प्रतिशत कार्बोहायड्रेट विद्यमान होता है। ये दोनो पोषक पदार्थ संयुक्त रूप से शरीर पर एक शक्तिशाली प्रभाव छोड़ते हैं जिसके फलस्वरूप मस्तिष्क में पाये जाने वाले सभी रसायन (विशेषकर सिरोटोनिन, डोपामीन, तथा अफीम सदृश पेप्टाइडस) अपने अधिकतम स्तर तक मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव छोड़ते हैं कि चॉकलेट खाने वाला बहुत अच्छे और सुन्दर मनोभावों में गोते लगाने लगता है। चॉकलेट मस्तिष्क से अफीम सदृश रसायनों को जिन्हें इन्डोर्फिन (endorphin) कहते हैं, के स्रवण को उद्दीपित करता है। ये इन्डोर्फिन रसायनिक रूप से मार्फीन से मिलते-जुलते हैं जिसके कारण मस्तिष्क इनके प्रति वही प्रतिक्रिया देता है जैसा कि मार्फीन के प्रति देता है जिसके कारण चॉकलेट उपभोक्ता इसे खाने के बाद बहुत ही आनंद का अनुभव करने लगता है और उसे अपने भीतर स्फूर्ति और नये जोश का संचार महसूस होने लगता है।

चॉकलेट में विद्यमान औषधि तुल्य रसायन :

वैश्विक स्तर पर विभिन्न रसायन शास्त्रियों एवं वैज्ञानिकों द्वारा चॉकलेट पर किए गए शोधों से जो परिणाम प्राप्त हुए हैं उनके अनुसार इसमें औषधीय रूप से सक्रिय कई प्रकार के यौगिक विद्यमान होते हैं और इन सभी यौगिकों का शरीर एवं मस्तिष्क पर अन्य औषधियों की ही भांति प्रभाव पड़ता है। चॉकलेट में पाए जाने वाले विभिन्न औषधीय यौगिक निम्नवत हैं :-

1. अनानडामाइडस (Anandamides)

ये कन्नाबिनायड सदृश वसा अम्ल होते हैं। चॉकलेट के औषधीय गुणों पर किये गये हाल के शोधों से रोचक तथ्य सामने आए हैं। इन शोधों के अनुसार इन में एक ऐसा अणु पाया जाता है जो कन्नाबिनायडों के क्रिया-कलापों की हू-ब-हू नकल करता है। यह सर्वविदित तथ्य है कि कन्नाबिनायडस तथा मारिजुआना (marijuana) औषधि के रूप में माइग्रेन, मांसपेशियों की ऐंठन, लकवा, ग्लूकोमा, विभिन्न प्रकार के दर्द, तथा जी मिचलाना, चक्कर आना आदि रोगों की चिकित्सा में पिछले 4000 वर्षों से उपयोग में आ रहे हैं। इसके अतिरिक्त शरीर को आराम प्रदान करने तथा मनो-मस्तिष्क को आनंददायी अनुभूति प्रदान करने जैसे कार्यों के लिए भी इनका उपभोग संपूर्ण विश्व में होता आ रहा है।

सानदियागो, कैलिफोर्निया स्थित 'न्यूरोसांइसेज इंस्टीट्यूट' में शोधकर्ताओं के एक समूह ने चॉकलेट में जैविक रूप से सक्रिय घटकों के एक समूह की पहचान की है जिसमें सबसे प्रमुख अनानडामाइड हैं जो मस्तिष्क में पाए जाने वाले अंतर्जात कन्नाबिनायड तंत्र को प्रभावित करने का काम करते हैं। अनानडामाइड, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'आंतरिक परमसुख', एक लिपिड है और यह मस्तिष्क में विद्यमान कन्नानियड ग्राहियों से बंधन करके उन्हें उत्तेजित करता है जिसके फलस्वरूप शरीर में कन्नाबिनायड आधारित औषधि जन्य परम आनंद तथा परम सुरक्षा बोध की अनुभूति होने जैसे मानसिक प्रभावों की उत्पत्ति होने लगती है।

अनानडामाइड के अतिरिक्त कोकोआ और चॉकलेट में दो अन्य असंतृप्त वसा अम्ल भी पाए जाते हैं जो रासायनिक एवं औषधीय रूप से अनानडामाइड से संबंधित हैं। इन वसा अम्लों को एन - एसिलइथेनोलअमीन्स (N-acylethanolamines(NAEs) के नाम से जाना जाता है और ये दो भिन्न-भिन्न समरूपों में पाए जाते हैं। इन्हें एन-ओलिओलिथेनॉलअमीन (N-oleoylethanolamine) एवं एन-लिनोलिओलिथेनॉलअमीन (N-linoleoylethano -

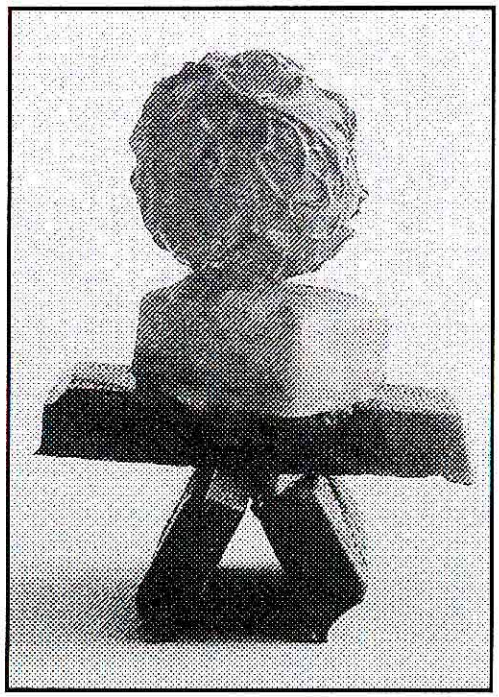

चित्र - 6

lamine) के नामों से जाना जाता है। ये वसा अम्ल विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा शरीर में आंतरिक रूप से मौजूद कन्नाबिनायड को या तो विखण्डित करके अनानडामाइड में बदल देते हैं या कन्नाबिनायड ग्राहियों को सक्रिय करके मस्तिष्क में मौजूद अनानडामाइड के स्तर को बढ़ा देते हैं जिसके कारण चॉकलेट खाने वाले काफी देर तक परमसुख की अनुभूति करते रहते हैं। इसके साथ-साथ ये वसा अम्ल चॉकलेट में पाए जाने वाले जैविक रूप से सक्रिय अन्य घटकों (यथा-कैफीन एवं थियोब्रोमीन) से भी अन्योन्य क्रिया करते हैं और चॉकलेट खाने वाले को चरमानन्द की अनुभूति कराते हैं।

2. मेथिलजैन्थीन्स (Methylxanthines)

चॉकलेट में पर्याप्त मात्रा में मेथिलजैन्थीन्स रसायन विद्यमान होते हैं जिसमें मुख्यत: कैफीन और थिओब्रोमीन आते हैं। थिओब्रोमीन लगभग कैफीन सदृश पदार्थ है और यह केवल चॉकलेट में ही पाया जाता है। ये दोनो ही रसायन उद्दीपक हैं और इनमें से कैफीन मनुष्य के व्यवहार पर काफी असरकारी प्रभाव डालता है। यद्यपि मेथिलजैन्थीन्स क्षारक हैं परंतु इनका पीकेए (pKa) काफी निम्न (0.5) होता है। पीकेए काफी निम्न होने के कारण ये वसा में अत्यधिक घुलनशील होते हैं जिसके फलस्वरूप ये पेट में और आंतों की दीवारों के द्वारा अच्छी तरह अवशोषित कर लिए जाते हैं। थिओब्रोमीन पर हाल में की गयी शोधों से यह तथ्य सामने आया है कि थियोब्रोमीन वेगस तंत्रिका (Vagus nerve) जो खांसी और बलगम के लिए जिम्मेदार होती है, की क्रियाशीलता को काफी हद तक कम कर देती है। वस्तुत: लगातार आने वाली खांसी को रोकने के लिए मुख्य औषधि के रूप में प्रयोग की जाने वाली कोडीन (Codeine) की तुलना में थिओब्रोमीन 30 प्रतिशत ज्यादा प्रभावी पायी गयी है। इसी कारण चॉकलेट को अब खांसी रोकने के लिए एक नयी एवं प्रभावी औषधि के रूप में भी बाजार में बिक्री के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है।

चॉकलेट के अलग-अलग पैक में, चाहे वो एक ही कम्पनी के उत्पाद क्यों न हों, मेथिलजैन्थीन्स की मात्रा अलग-अलग होती है। उदाहरणार्थ; एक ब्रांड विशेष की चॉकलेट बार में कैफीन की मात्रा 10 मिग्रा. (22 मिग्रा./ 200 ग्राम) तथा थिओब्रोमीन 92 मिग्रा. (197 मिग्रा. /100 ग्राम) मौजूद रहती है। इन्हीं उपरोक्त तथ्यों के आधार पर बहुत से वैज्ञानिक यह मानने लगे हैं कि चॉकलेट में विद्यमान गुण मेथिलजैन्थीन्स के कारण ही होते हैं।

3. बायोजनिक अमीन

चॉकलेट में पाये जाने वाले यौगिकों के एक अन्य समूह को बायोजनिक अमीन के नाम से जाना जाता है। इन अमीनों में मुख्यत: टायरामीन (Tyramine) तथा फेनिलइथिलअमीन [Phenylethylamine (PEA)] होते हैं। बायोजनिक अमीन प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले जैविक रूप से सक्रिय वे यौगिक हैं जो प्राथमिक रूप से तंत्रकीयप्रेषी (neurotransmitters) के रूप में कार्य करते हैं और मस्तिष्क की क्रियाशीलता तथा विभिन्न शारीरिक क्रिया-कलापों जैसे रक्त-चाप तथा शारीरिक तापक्रम को प्रभावित कर सकने की क्षमता रखते हैं। टायरामीन एक ऐसा अमीनो अम्ल है जिसमें रक्त वाहिनियों को संकुचित कर सकने की क्षमता होती है और प्राय: इसे संवदेनशील व्यक्तियों में माइग्रेन सिर दर्द उत्पन्न करने का एक कारक माना जाता है।

पीईए मस्तिष्क में एक प्राकृतिक तंत्रकीयप्रेषी के रूप में पाया जाता है और यह तंत्रिका-तंत्र को उत्तेजित करके मनुष्य में ऐसी भावनाएं उत्पन्न करता है जैसा कि किसी को किसी से प्यार हो जाने पर उत्पन्न होती है। इसी कारण संपूर्ण विश्व में पीईप को 'प्यार उत्पन्न करने वाली औषधि' के रूप में तथा चॉकलेट में विशिष्ट एवं अद्‌भुत गुणों को उत्पन्न करने के लिए जाना जाता है।

पीईए संरचनात्मक एवं औषधीय रूप से केटचोलामीन्स (catecholamines) तथा एंफीटामीन्स (amphetamines) सदृश होती हैं। ये दोनों वे पदार्थ हैं जो रक्त में मिलने पर हृदय गति, रक्त चाप, श्वास गति, मांसपेशियों की शक्ति तथा मानसिक चैतन्यता को बढ़ा देते हैं। वस्तुत: अपनी एंफीटामीन सदृश संरचना एवं आकर्षण की भावनाएं बढ़ाने तथा उत्तेजना एवं बोध भाव में वृद्धि कर सकने की क्षमता के कारण पीईए 'चॉकलेट एंफीटामीन' के उपनाम से प्रसिद्ध हो गया है। पीईए शरीर में डोपामीन के निर्माण की प्रक्रिया को आरम्भ करता है और निर्मित डोपामीन को मस्तिष्क में संचारित कर देता है जिसके फलस्वरूप मस्तिष्क में आनंद की अनुभूति करने वाले केंद्र उद्‌दीपित हो जाते हैं। मनुष्यों में संभोग के क्षणों में शरीर में पीईए की मात्रा अपने चरम स्तर पर होती है।

चॉकलेट में पीईए अपनी प्रभावकारी सांद्रता (0.4 से 6.6 μ g/g) में विद्यमान रहती है। अनेक वैज्ञानिकों के अनुसार मस्तिष्क में मौजूद पीईए की मात्रा तथा मनोभावों के स्वत: नियंत्रण के लिए ही लोगों में चॉकलेट के प्रति आकर्षण बढ़ता है।

अल्कलॉएड्स

स्पेन में हाल में की गयी एक शोध के अनुसार शराब में जो अल्कलॉएड यौगिक पाये जाते हैं वो सभी चॉकलेट में भी विद्यमान होते हैं और जिस इस का रंग जितना अधिक गाढ़ा होगा उसमें उतनी ही अधिक मात्रा में ये अलकलॉएड्स होंगे। शोध विज्ञानियों ने विशेष रूप से यह प्रदर्शित किया है कि सामान्य कोकोआ तथा कॉकटेल बार में दो विभिन्न समूहों के अल्कलॉएड्स पाये जाते हैं। इनमें से प्रथम समूह 'टेट्राहाइड्रो-बीटा-कारबोलीन्स' (टीएचबीसी) [Tetrahydro-betacarbolines(THBCs)] का होता है तथा दूसरा समूह 'टेट्राहाइड्रोआइसोक्यूनोलीन्स' (टीआईक्यू) [Tetrahydroisoquinolines(TIQs)] अल्कलॉएड का होता है। विभिन्न नशीले पेयों जैसे वाइन, बीयर तथा शराब में दो टीएचबीसी यौगिकों की सांद्रता अपेक्षाकृत अत्यधिक मात्रा में होती है और चॉकलेट तथा कोकोआ में भी ये दोनो यौगिक इन नशीले पेयों के समतुल्य मात्रा में ही विद्यमान होते हैं। शराब में मौजूद उपरोक्त रसायन तंत्रिका सक्रियता गुण प्रदर्शित करते हैं और उपभोक्ता में शराबखोरी की प्रवृत्ति उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदार होते हैं। इसी कारण शराबखोरी की आदत से छुटकारा पाने के लिए प्रयत्नशील व्यक्तियों द्वारा शराब के प्रति अपनी चाहत कम करने के लिए तथा अपना आत्मसंयम बनाए रखने के लिए चॉकलेट खाने की उनकी ललक बढ़ जाती है। वस्तुत: वर्ष 2002 में ए.ए. सर्विसेज, हाजेल्डन (A. A. Services, Hajelden) द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'अल्कोहिलिक एनानिमस' में शराब की चाहत कम करने के लिए चॉकलेट खाने का परामर्श दिया गया है।

संपूर्ण विश्व में अनेक वैज्ञानिकों द्वारा चॉकलेट में विद्यमान उपरोक्त अल्कलॉएडस का मानवी मनोभावों तथा व्यवहार पर पड़ने वाले संभावित प्रभावों पर अनुसंधान किया जा रहा है। अनुसंधान से प्राप्त परिणामों से यह तथ्य सामने आए हैं कि ये अल्कलॉएड्स, मस्तिष्क द्वारा उत्पन्न किए जाने वाले अंतर्जात ओपाएड्स (इन्डोर्फिन) हार्मोन, जिसके कारण हमें आनंद की अनुभूति होती है, के उत्पादन को प्रभावित करते हैं। इस संदर्भ में किए गए अन्य अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि टीएचबीसी संभवत: मोनोअमीन ऑक्सीडेज (monoamine oxidase-एम ए ओ) पर प्रभाव के माध्यम से न्यूरोमाडूलेटर्स का कार्य करते हैं। एमएओ मुख्य रूप से वह एन्जाइम है जो न्यूरोट्रांसमीटर्स (जैसे सिरोटोनिन एवं डोपामीन) के उत्पादन एवं विखण्डन में प्रभावी भूमिका अदा करता है और भूख, प्रेरणा, चाहत, मनोभाव एवं नींद आदि क्रियाओं के लिए निर्णायक भूमिका अदा करता है।

चॉकलेट में पाए जाने वाले दूसरे अल्कलॉएड-टीआईक्यू में सालसोलिनॉल (Salsolinol) एवं सालसोलिन विद्यमान होता है। शोध कार्यों से प्राप्त प्राथमिक प्रमाण यह दर्शाते हैं कि सालसोलिनॉल अंतर्जात ओपायड्स (इन्डोर्फिन) के उत्पादन को प्रभावित करता है तथा 100 ग्राम चॉकलेट के खाने से शरीर को प्राप्त सालसोलिनॉल की मात्रा डोपामीन ग्राहियों से अन्योन्य क्रिया करने के लिए पर्याप्त होती है।

यद्यपि एक चॉकलेट में सालसोलिनॉल की सांद्रता काफी कम होती है लेकिन मस्तिष्क पर इसका प्रभाव काफी महत्त्वपूर्ण होता है। मस्तिष्क पर सालसोलिनॉल का यह प्रभाव चॉकलेट में मौजूद अन्य जैविक रूप से सक्रिय पदार्थों से मिलकर और प्रभावी हो जाता है। इसी कारण सालसोलिनॉल को कोकोआ तथा चॉकलेट के उन मुख्य यौगिकों में से एक माना जाता है जो मनो-मस्तिष्क स्तर पर सक्रिय होते हैं।

चॉकलेट का मानव मस्तिष्क एवं व्यवहार पर प्रभाव :

जिस प्रकार शराब के आदी व्यक्तियों को अल्कॉहिलिक कहा जाता है, ठीक इसी प्रकार चॉकलेट खाने के आदी हो चुके व्यक्तियों के लिए 'चॉकोहोलिक' का नाम दिया जाना समीचीन होगा। लेकिन सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि चॉकलेट खाते समय या खाने के बाद चॉकलेट में विद्यमान औषधीय रूप से सक्रिय अद्वितीय संवेदनात्मक गुणों वाले यौगिकों के प्रति मस्तिष्क कैसी एवं किस प्रकार की प्रतिक्रिया करता है? हालांकि अधिकांश व्यक्ति जिन्हें चॉकलेट अति प्रिय है, को चॉकलेट खाने के बाद असीम आनंद एवं सुख की अनुभूति होती है। यहां तक कि चॉकलेट के कुछ ऐसे भी दीवाने हैं जिन्हें इस के विषय में सोचने से अत्यधिक आनंद का अनुभव होने लगता है।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि विभिन्न प्रकार की नशीली वस्तुओं के सेवन के उपरांत ये पदार्थ सीधे मस्तिष्क पर ही अपना प्रभाव डालते हैं। मस्तिष्क भोजन या सैक्स की तुलना में इन नशीले पदार्थों के प्रभाव में आकर कार्य करने के अपने प्राकृतिक ढंग पर अपना नियंत्रण खो बैठता है जिसके कारण व्यक्ति को आनंद की अनुभूति होती है। नशा अधिक हो जाने पर शरीर पर मस्तिष्क का नियंत्रण पूर्णतया समाप्त हो जाता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति अनाप-शनाप बकने लगता है तथा उल्टी-सीधी हरकतें

करने लगता है। ठीक ऐसा ही कुछ मस्तिष्क स्तर पर चॉकलेट खाने के बाद भी होता है। चॉकलेट खाने वाले एक सामान्य व्यक्ति के मस्तिष्क का चॉकलेट खाने की प्रबल इच्छा की स्थिति में किये गए एक स्कैन अध्ययन में यह पाया गया कि जब इस व्यक्ति को उसके प्रिय ब्रांड की चॉकलेट को दिखाया और सुंघाया गया तो उसके मस्तिष्क में ठीक उसी प्रकार की प्रतिक्रिया हुई जैसा कि कोकेन के नशे के आदी किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में तब होती है जब वह अपने नशे की अगली खुराक के बारे में सोचता है। इस परिणाम से शोधकर्ताओं ने यह निष्कर्ष निकाला कि नशीले पदार्थ तथा चॉकलेट, दोनों ही मस्तिष्क के उस भाग विशेष में कुछ ऐसे दीर्घकालिक शरीर-क्रियात्मक परिवर्तनों को उत्पन्न करते हैं जो नशे के आदी होने के कुछ पहलुओं के लिए जिम्मेदार होता है। अत: नशे का आदी होने के लिए जिम्मेदार मस्तिष्क का क्षेत्र-विशेष, चॉकलेट विषयक संकेत पाते ही ठीक उसी प्रकार कार्य करने लगता है जैसा कि नशे की स्थिति में होता है।

उपरोक्त परिणाम इस तथ्य को मजबूती प्रदान करता है कि चॉकलेट खाने पर मस्तिष्क चॉकलेट को भी नशा उत्पन्न करनेवाली कोई औषधि या पदार्थ समझता है और चॉकलेट के प्रति चाहत उत्पन्न करने में डोपामीन तंत्र आवश्यक अंगभूत भूमिका अदा करता है।

हृदय के लिए लाभप्रद है चॉकलेट ?

चॉकलेट, विशेषकर गाढ़े रंग की चॉकलेट खाने से हृदय संबंधी समस्याओं में होने वाले लाभों के बारे में पिछले चार वर्षों में काफी अध्ययन हो चुका है और काफी शोध-पत्र भी छप चुके हैं। स्वयं-सेवकों पर किए गए विभिन्न नियंत्रित शोध अध्ययनों में यह पाया गया है कि गाढ़े रंग की चॉकलेट खाने के बाद स्वयंसेवकों की रक्त वाहिनियों के तनाव में कमी आ जाती है जिसके फलस्वरूप उनके उच्च रक्तचाप में कमी आ जाती है। इसी के साथ-साथ इन स्वयंसेवकों के शरीर के विभिन्न अंगों के सूजन (यदि है तो) में कमी, निम्न घनत्व वाले लिपोप्रोटीन्स का अपचित ऑक्सीकरण तथा अपचित प्लेटलेट समुच्चयन (reduced platelet aggregation) जैसे लाभप्रद प्रभाव भी देखने को मिले। शोध-अध्ययनों के इन सकारात्मक परिणामों का कारण कोकोआ में पाए जाने वाले कुछ निश्चित समूह के फ्लेवोनांयड्स जैसे 'फ्लेवान-3 - ओल्स' (Flavon-3-ols) को बताया गया है। ये रसायन, जिनमें (-)इपीकेटेचिन 4[(-)epicatechin),(+) केटेचिन [(+)catechin] तथा प्रोसायनीडिन्स (procyanidins) प्रमुख हैं, में प्रभावी स्तर के प्रति-ऑक्सीकारक गुण विद्यमान होते हैं। इन रसायनों के कारण नाइट्रिक ऑक्साइड के उत्पादन का उद्दीपित होना, फ्लेवोनॉयड्स के लाभकारी होने का एक अन्य संभावित कारण है। ये सभी सकारात्मक प्रभाव गाढ़े रंग की चॉकलेट तक ही सीमित पाये गए हैं क्योंकि दुग्ध निर्मित चॉकलेट में विद्यमान दुग्ध भाग आहार नली में फ्लेवोनॉल के अवशोषण में अवरोध पहुंचाता है।

अलग-अलग निर्माताओं द्वारा उत्पादित गाढ़े रंग की चॉकलेट में फ्लेवोनॉल की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि चॉकलेट बनाने के लिए निर्माताओं द्वारा कोकोआ को किस प्रकार भूना ओर संसाधित किया गया है और इसके बाद चॉकलेट के निर्माण में किस प्रकार की प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया गया है। एक अध्ययन के अनुसार चॉकलेट उत्पादन में उपयोग की जाने वाली प्रक्रिया के कारण चॉकलेट में फ्लेवोनॉयड्स की मात्रा 90 प्रतिशत तक कम हो सकती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए बहुत सी चॉकलेट उत्पादक कंपनियां चॉकलेट की अपने पूरी निर्माण प्रक्रिया का अध्ययन कर रही हैं जिससे कि उन्हें इस बात का पता चल सके कि निर्माण के दौरान होने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं में क्या किसी स्तर पर फ्लेवोनॉयड्स नष्ट हो रहे हैं और यदि नष्ट हो रहे हैं तो कितनी मात्रा में तथा इन निर्माण प्रक्रियाओं के दौरान फ्लेवोनॉयड्स को नष्ट होने से बचाने के लिए क्या-क्या उपाय किये जा सकते है। इस प्रकार अब हम गाढ़े रंग की जो भी चॉकलेट खरीदेंगे उसके आवरण पर हमें उस चॉकलेट में मौजूद फ्लेवोनॉयड्स की प्रतिशत मात्रा लिखी मिलेगी। हुर्रे ! जितनी ज्यादा फ्लेवोनॉयड्स की मात्रा, उतना ही अधिक हमारे दिल को लाभ।

गाढ़े रंग की चॉकलेट के उपभोग के साथ एक अन्य बड़ा लाभकारी पक्ष भी जुड़ा है और वह यह है कि उसमें अत्यधिक मात्रा में कैलोरी विद्यमान होती है। 100 ग्राम के एक चॉकलेट बार में लगभग 500 कैलोरी पायी जाती है। जिसके कारण कैलोरी की आवश्यकता की पूर्ति के लिए इसे हम अपने प्रतिदिन के आहार में एक डेजर्ट के रूप में ले सकते हैं।

चॉकलेट के साथ महिलाओं का विशेष संबंध :

पुरुषों की तुलना में महिलाओं को चॉकलेट की चाहत अधिक होती है। महिलाओं को चॉकलेट की चाहत अधिक क्यों होती है। या फिर इस में क्या ऐसा कोई पदार्थ पाया जाता है जो महिलाओं को इसका इतना दीवाना बना

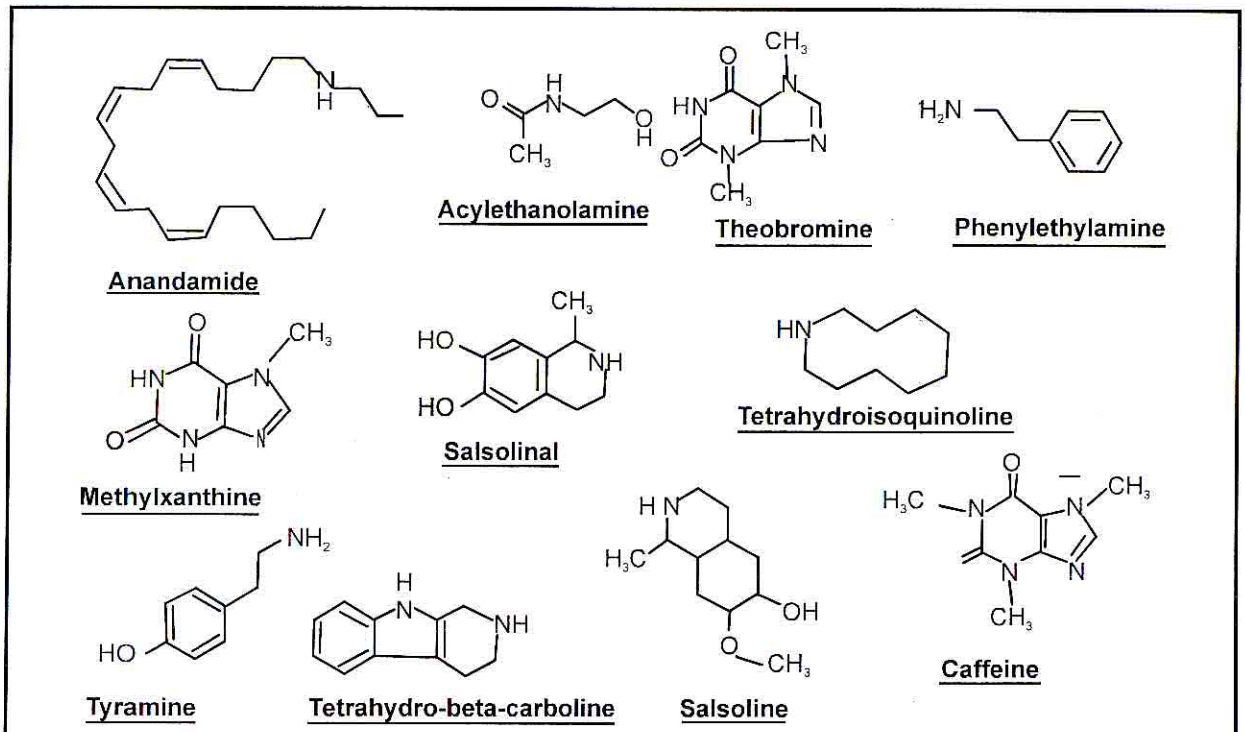

चित्र – 7 : चॉकलेट में पाये जाने वाले विभिन्न रसायन

देता है कि उन्हें चॉकलेट की चाहत के पीछे न तो अपने लिए पोषक भोजन की चिंता रहती है और न ही अपना शारीरिक भार और मोटापा बढ़ने की चिंता रह जाती है। इसी यक्ष प्रश्न ने वैज्ञानिकों को इस विषय में शोध करने के लिए प्रेरित किया।

वैश्विक स्तर पर अनेक वैज्ञानिकों द्वारा स्त्रियों में चॉकलेट के प्रति दीवानगी पर किए गए शोध अध्ययनों से यह तथ्य सामने आए हैं कि स्त्रियों के शरीर को वसा और शर्करा की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है और यह जरूरत उनकी जनन संबंधी आवश्यकताओं के कारण होती है। महिलाओं में यौवनावस्था आने एवं ऋतु-चक्र के दौरान अण्डाणुओं के निर्माण के लिए उनके शरीर को वसा तथा शर्करा की अत्यधिक मात्रा की आवश्यकता रहती है जो उनके द्वारा गर्भधारण के दौरान ऊर्जा भंडारों के रूप में कार्य करते हैं।

कुछ अन्य वैज्ञानिकों के विचार में चॉकलेट के प्रति स्त्रियों की चाहत उनके शरीर में पाए जाने वाले प्रजनन से संबंधित विभिन्न प्रकार के हार्मोन्स के कारण होती है। कुछ अन्य शोधकर्ताओं के अनुसार चॉकलेट के प्रति स्त्रियों की चाहत के पीछे सांस्कृतिक एवं सामाजिक आधार एवं कारण भी होते है क्योंकि स्त्रियाँ चॉकलेट को प्यार, काम-वासना तथा संतोष से जोड़कर देखती हैं। स्त्रियों में चॉकलेट के प्रति चाहत उत्पन्न करने के पीछे, विशेषकर विदेशों में, विज्ञापनों का भी बहुत बड़ा हाथ होता है क्योंकि विभिन्न चॉकलेट उत्पादक कंपनियां अपने लुभावने विज्ञापनों द्वारा चॉकलेट खाने के लिए पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को लुभाने में काफी सफल हैं।

चॉकलेट के अद्‌भुत लक्षण, जिसमें इसके संवेदनात्मक गुण, औषधीय रूप से सक्रिय अनेक यौगिक एवं रसायन तथा मानव मस्तिष्क एवं उसके हाव-भाव पर नशीली औषधियों जैसे विस्मयकारी प्रभावों का वैश्विक स्तर पर अनेक वैज्ञानिकों एवं शोधनकर्ताओं द्वारा विस्तृत अध्ययन किया जा चुका है। फिर भी चॉकलेट के जादुई प्रभावों के बारे में, विशेषकर स्त्रियों पर, वैज्ञानिक अभी तक किसी निश्चित परिणाम पर एकमत नहीं हो सके हैं। इन सभी रोमांचक एवं विस्मयकारी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि चॉकलेट केवल एक सुस्वादु खाद्य-पदार्थ ही नहीं हैं जो केवल सेमांस, प्यार और आनंद का प्रतिनिधित्व करता है बल्कि चॉकलेट गाढ़े रंग के मीठे बार में भरे हुए औषधीय तत्त्वों का एक ऐसा कॉकटेल है जो खाने के बाद हमारे शरीर एवं मनो-मस्तिष्क को एक अलौकिक आनंद की अनुभूति करा सकने में पूर्ण-रूपेण सक्षम है।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2006) में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

न्यूट्रीशनल जीनोमिक्स

जसप्रीत कौर

पोस्ट ग्रेजुएट (जैव रसायन), लखनऊ

जैसा कि विदित है कि मनुष्य का स्वास्थ्य उसके द्वारा उपभोग किये गये आहार पर पूरी तरह निर्भर है। इतना ही नहीं, यदि किसी व्यक्ति विशेष के आहार का क्या स्वरूप हो, का निर्णय उसके जीन की संरचना के आधार पर किया जाये, तो कई व्याधियों से मुक्ति मिल सकती है। 'न्यूट्रीशनल जीनोमिक्स' का संबंध इसी विषय से है। प्रस्तुत लेख में आहार व जीन की संरचना के संबंध पर चर्चा की गयी है।

मनुष्य का शरीर बहुत सी कोशिकाओं से मिलकर बनता है एवं हर कोशिका अपने आप में एक पूरा जीनोम (जीन्स का पूरा सेट) समेटे होती है। मनुष्य में जनन के समय शुक्राणु का डी.एन.ए. तथा अण्डाणु का डी.एन.ए. मिलकर एक भ्रूण का जीनोम निर्धारित करते हैं। प्रत्येक कोशिका की यही सूचना आगे चलकर एकपूर्ण विकसित अंगतंत्र का निर्माण करती है।

वैज्ञानिकों के शोध के निष्कर्षों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य में लगभग 30,000 जीन होते हैं जो एक धागे समान संरचना पर उपस्थित होते हैं, जिन्हें क्रोमोजोम कहते हैं। जीन (coding DNA) केवल मनुष्य के डी.एन.ए. का 3% है, बाकी 97% भाग नॉनकोडिंग डी.एन.ए. होता है। जीनोम के इस नानकोडिंग डी.एन.ए. के द्वारा यह तय होता है कि कब और कहाँ कौन से जीन सक्रिय होंगे। दूसरे शब्दों में किस कोशिका में और जीव के जीवन के किस स्तर पर इनकी उपयोगिता प्रमाणित होगी।

जीनोमिक्स (Genomics) विज्ञान की वह शाखा हैं जिसमें कोडिंग और नॉनकोडिंग दोनों आते हैं तथा जीन और उसके कार्यों का अध्ययन करते हैं। दूसरे तौर पर किस प्रकार जीव के जीन पारस्परिक क्रिया करके और वातावरण के साथ क्रिया करके जीवन को जटिल बनाते हैं। जीनोमिक्स से हमें रोग उत्पन्न करने वाले जीनों का पता चलता है।

जीनोमिक्स निम्न के संदर्भ में जीवों की जेनेटिक्स से संबंधित जानकारी की व्याख्या करता है -

- प्रत्येक जीन की भूमिका
- जीन की क्रियात्मकता किस तरह नियंत्रित होती है।
- जीन किस तरह अपने चारों ओर के वातावरण से प्रभावित होते हैं।

मानव शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए उचित आहार आवश्यक है। पोषण और स्वास्थ्य का बहुत पुराना संबंध है। ''उचित पोषण आरोग्य शरीर''। पोषण और स्वास्थ्य के संबंध पर शोध इस बात पर केंद्रित है कि कोशिका, ऊतक, अंग और अंगतंत्र के होमियोस्टेसिस बनाये रखते हुए किस प्रकार रोग की रोकथाम की जाए। इसके लिए इस बात को जानना आवश्यक है कि पोषण किस प्रकार जीन से, प्रोटीन से या किसी उपापचयी स्तर पर क्रिया करता हैं।

न्यूट्रीशनल जीनोमिक्स वह विज्ञान हैं जीसमें मानव के जीनोम, पोषण और स्वास्थ्य के बीच में संबंध का अध्ययन करते हैं। इसको दो प्रमुख भागों में बाँटा गया है;

1. न्यूट्रीजीनोमिक्स –

इसके अंतर्गत पोषक पदार्थों से जीनोम, प्रोटियोम और मेटाबोलोम में बदलाव का स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन करते हैं।

2. न्यूट्रीजेनेटिक्स –

इसके अंतर्गत जीनों में भिन्नता का पोषक पदार्थों और स्वास्थ्य की पारस्परिक क्रिया पर प्रभाव का अध्ययन करते हैं।

न्यूट्रीजीनोमिक्स के अंतर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि किस तरह विभिन्न प्रकार के भोजन जीन से पारस्परिक क्रिया करके विभिन्न रोगों के बढ़ने का खतरा बढ़ा देते हैं। जिनमें टाईप-II डायबिटीज़, मोटापा,

हृदय रोग और कुछ कैंसर आते हैं। न्यूट्रीजीनोमिक्स हमें यह बताता है कि किस प्रकार हमारे पोषक पदार्थ जीन से प्रोटीन में परिवर्तित होकर तथा जीव के जीनोम की संरचना को बदलकर हमारे स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं।

पोषक पदार्थों का स्वास्थ्य पर प्रभाव जीव के जेनेटिक मेकअप या जीनोटाइप पर निर्भर करता है। मानव जीनोम परियोजना (Human Genome Project) के अनुसार प्रत्येक जीव का एक अलग जीन ढाँचा होता है, जो दूसरे जीव से भिन्न होता है। इस बात को समझना एक बहुत बड़ी चुनौती है कि किस तरह प्रत्येक जीव के जीन पारस्परिक क्रिया करते हैं और साथ ही वातावरणीय परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। वातावरणीय परिस्थितियों और जेनेटिक्स की पारस्परिक क्रिया का परिणाम ही रोगहीन या रोगग्रसित होना है। पोषक पदार्थ एक मुख्य वातावरणीय प्रभाव है, जो जीन की सूचना पर अपना प्रभाव डालता है क्योंकि पोषक पदार्थ हमारे भोजन में उपस्थित हैं। जीनोमिक्स शोध की इस नयी शाखा का प्रमुख सिद्धांत हम न्यूट्रीजीनोमिक्स की पाँच प्रमुख बातों से समझ सकते हैं -

1) कुछ विशेष परिस्थितियों में और कुछ जीवों में पोषक पदार्थ बहुत से रोगों का कारण बनते हैं।
2) साधारण पोषक पदार्थ मानव जीनोम पर सीधा या किसी और तरीके से प्रभाव डालते हैं जो जीन की संरचना और कार्यिकी को बदल देता है।
3) किस हद तक पोषक पदार्थ स्वास्थ्य और रोगग्रसित दशा के संतुलन को प्रभावित करते हैं, यह भी जीवों के जीनों की बनावट पर निर्भर करता है।
4) कुछ जीन जो पोषक पदार्थों के नियंत्रण में कार्य करते हैं, रोग होने और बढ़ाने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।
5) पोषक पदार्थों की आवश्यकता, पोषण स्तर और जीनो के टाइप के अनुसार पोषण में हस्तक्षेप, बीमारी की रोकथाम और बीमारी को ठीक करने में सहायक है।

जिस प्रकार फारमेकोजीनोमिक्स हमें जीव विशेष की औषधि या ''डिजाइनर ड्रग'' की धारणा देता है उसी तरह न्यूट्रीजीनोमिक्स हमें जीव विशेष के न्यूट्रीशन के महत्त्व को समझाता है। दूसरे शब्दों में अपनी पोषक पदार्थों की आवश्यकता के अनुसार, पोषण स्तर और जीनोटाइप या जीन ढाँचे के अनुसार न्यूट्रीजीनोमिक्स पोषक का जीन की बनावट के अनुसार चयन करके जीवों को अपना स्वास्थ्य सुधारने और बीमारियों की रोकथाम में मदद करती हैं।

जेनेटिक्स की उन्नति के साथ ही यह ज्ञात हुआ कि जैवरसायनिकी गड़बड़ियाँ जीनों से ही जुड़ी थी। जीन बहुरूपता (Gene Polymorphism) का भी विशेष महत्त्व है। फोलेट मेटाबोलिज्म इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण है। जहाँ साधारण बहुरूपता उस जीन के लिए दिखती है, जो मिथाइल टेट्राहाइड्रो फोलेट नामक एन्जाइम का निर्माण करता है। इससे यह ज्ञात हुआ कि इसी तरह हजारों और दूसरे जीनों में भिन्नता ही पोषण जैव रसायन में छोटे-छोटे फर्क कर देती है।

विभिन्न प्रयोगात्मक अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि पोषण और रासायनिक पदार्थ जो पोषण में उपस्थित होते हैं हमारे विभिन्न कार्यकलापों पर प्रभाव डालते हैं। यह मानव जीनोम के जीन की संरचना और कार्यिकी में बदलाव के द्वारा ही संभव है। रासायनिक पदार्थ जो हमारे पोषण में उपस्थित होते हैं वह विभिन्न तरीकों से गुणसूत्रों पर उपस्थित जीन के प्रोटीन बनने में बदलाव ला सकते हैं-

- ये रासायनिक पदार्थ ट्रान्सक्रिप्शन फैक्टर रिसेप्टर के लिए एक लीगेंड का काम करे।
- या प्राथमिक और द्वितीय उपापचयी क्रियाओं द्वारा उपापचयित हो जिसके द्वारा सबस्ट्रेट और इन्टरमीडिएट के सांद्रण में परिवर्तन हो।
- या एक सूचना प्रसारण की तरह कार्य करे।

इस बात को चित्र-1 तथा चित्र-2 द्वारा समझा जा सकता है।

प्रायोगिक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि प्रतिदिन इस्तेमाल होने वाले खाद्य पदार्थों यथाफल, मसाले, सब्जियों इत्यादि में भी जीन पर प्रभाव डाल कर रोग को दूर करने की क्षमता होती है। करक्यूमिन (Curcumin) जो एक पीले रंग का पदार्थ है जो हल्दी में पाया जाता हैं, में एन्टीकैन्सर का गुण होता हैं। इसमें रोगित कोशिका को मारने की क्रिया, जिसे एपोप्टोसिस (Apoptosis) कहते हैं, को शुरू करने का गुण होता है और साथ ही यह प्रोस्टेट कैन्सर को बढ़ने से भी रोकता है। करक्यूमिन उन जीनों को सक्रिय होने से रोकता है जो हृदय रोग, आँत के

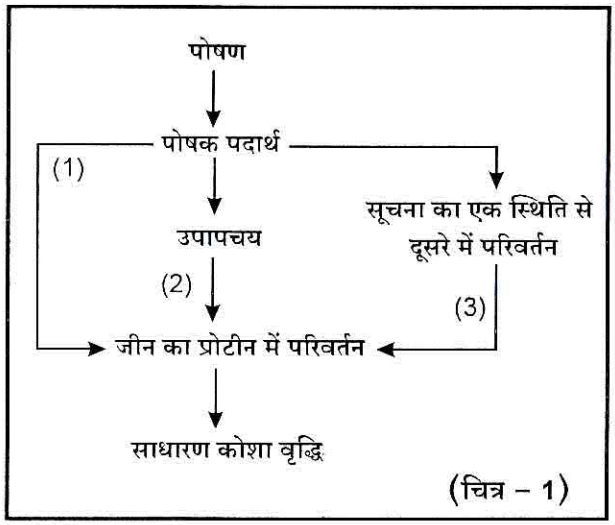

(चित्र – 1)

कैन्सर और एल्जाइमर रोग को प्रोत्सहित करता है। इसी तरह के कई उदाहरण सामने आते हैं।

पोषण और जेनेटिक्स के संबंध का एक बहुत अच्छा उदाहरण हमें एशियाई देशों में देखने को मिलता है, जहाँ लोग स्तन कैन्सर से कम ग्रसित होते हैं। एशियाई लोग सोया पर आधारित भोजन का बहुत सेवन करते हैं। जेनीस्टीन एक रासायनिक पदार्थ है जो सोया में उपस्थित होता है, रासायनिक संरचना में इस्ट्रोजन हारमोन से मिलता हैं। जिससे इस्ट्रोजन रिसेप्टर (जो स्तन कोशिका पर उपस्थित होता है) पर, बजाय इस्ट्रोजन जुड़ने के जेनीस्टीन जुड़ जाता लेकिन यह सूचना को आगे नहीं बढ़ाता जिससे स्तन कोशिकाओं की वृद्धि रुक जाती है और इस प्रकार यह कैन्सर की रोकथाम में सहायता करती है।

न्यूट्रीजीनोमिक्स के अंतर्गत बहुत सी प्रौद्योगिकियाँ सम्मिलित हैं, जो यह जानकारी देती हैं कि किस प्रकार पोषक पदार्थों के द्वारा कोशिका और ऊतक के अन्दर जीन की कार्यिकी में परिवर्तन होता है। न्यूट्रीजीनोमिक्स की यह नयी प्रौद्योगिकियाँ जैसे ट्रान्सक्रिपटोमिक्स, प्रोटियोमिक्स, मेटाबोलोमिक्स और एपीजीनोमिक्स जिनके द्वारा मूल अनुक्रम सूचना जो मानव जीनोम परियोजना द्वारा दिये गये हैं, का जटिल क्रियात्मक विश्लेषण किया जा सकता है।

ट्रान्सक्रिपटोमिक्स, जो माइक्रोऐरे(Microarray) का उपयोग करता है, बहुत ही सुविधाजनक मार्ग है जिसके द्वारा पोषक पदार्थ देने से किस तरह जीनोमिक स्तर पर जीन एक्सप्रेशन प्रभावित होता है समझा जा सकता है। एक समय में कुछ परिस्थितियों में कोशिका में उपस्थित सारे जीन का अध्ययन एक साथ किया जा सकता है और दूसरी कोशिका के जीन से तुलना की जा सकती है।

प्रोटियोमिक्स में प्रोटीन को 2D जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस के द्वारा अलग करते हैं तथा फिर प्रोटीन की मात्रा तथा प्रोटीन को द्रव्यमान स्पेक्ट्रोमीटरी से पहचानते हैं। इसके द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में प्रोटीन के एक्सप्रेशन को देखा जा सकता है तथा यह पता लगा सकते हैं कि रोग की दशा में कौन सा प्रोटीन बढ़ा है या कौन सा घटा है। मेटाबोलोमिक्स में कोशिका के अन्दर और शारीरिक रसों में उपस्थित उपापचयित पदार्थ का पोषक पदार्थ देने से क्या प्रतिक्रिया होती है, का अध्ययन करते हैं।

एपीजेनेटिक्स जीनोम में परिवर्तन, जो एक कोशिका विभाजन से अगली कोशिका विभाजन तक स्थानान्तरित होते हैं लेकिन जो प्राथमिक अनुक्रम में

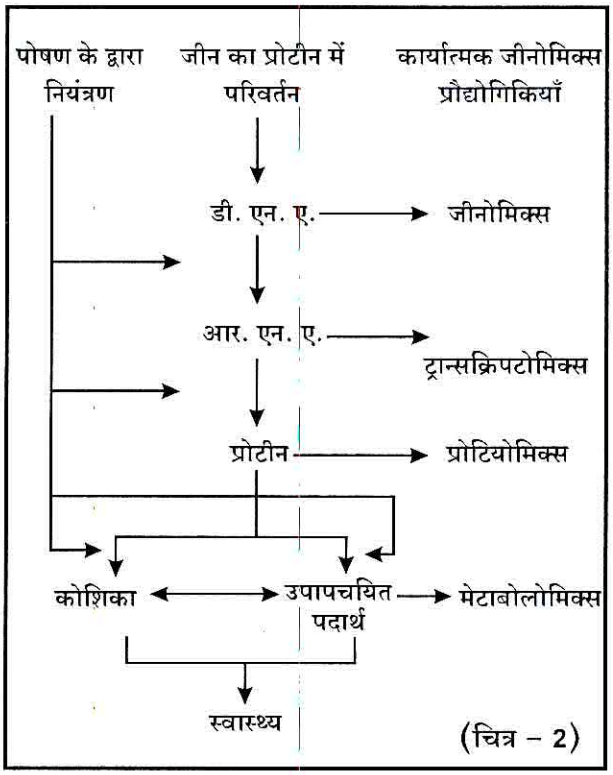

(चित्र – 2)

'परिवर्तन' को शामिल नहीं करते, का अध्ययन करते हैं। ये 'परिवर्तन' या तो क्रोमेटिन (Chromatin) प्रोटीन हिस्टोन में या डी.एन.ए. में मिथाइलेशन के होते है।

इस प्रकार न्यूट्रीशनल जीनोमिक्स तकनीकियों से भोज्य पदार्थों के परमाणविक प्रभाव का विस्तार से अध्ययन करके बहुत सारे रोगों से बचा जा सकता है।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2006) में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

मानव मस्तिष्क : अनंत संभावनाओं का द्वार

आलोक कुमार मिश्र एवं डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र, टी.आई.एफ.आर. मानखुर्द, मुंबई – 400 088.

विज्ञान चेतन अवस्था (अस्तित्व) की ही खोज कर सकता है, अचेतन अवस्था की नहीं। विज्ञान के बाहर के क्षेत्रों का मूल्यांकन करने के लिए दूसरे प्रकार के विवेक तथा बुद्धि की आवश्यकता पड़ता है।

– अल्बर्ट आइन्स्टाइन

मानव मस्तिष्क एक अलौकिक एवं उत्कृष्ट रचना है। इसकी संरचना, कार्यशैली एवं क्षमता के बारे में विविध विधा के वैज्ञानिक सदैव जिज्ञासु रहे हैं और मानव मस्तिष्क के कई तथ्यों को समझने में सफल भी हुए हैं। लेकिन मस्तिष्क के संपूर्ण क्रिया कलापों एवं क्षमताओं को जानने के लिए वैज्ञानिक आज भी तत्पर हैं। प्रस्तुत आलेख में मस्तिष्क के विभिन्न संरचनात्मक एवं क्रियात्मक पहलुओं की क्रमबद्ध चर्चा की गयी है।

मानव मस्तिष्क शरीर का एक आवश्यक अंग होने के साथ-साथ प्रकृति की एक उत्कृष्ट रचना भी है। देखने में यह एक जैविक रचना से अधिक नहीं प्रतीत होता। परन्तु यह हमारी इच्छाओं, संवेगों, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, चेतना, ज्ञान, अनुभव, व्यक्तित्व, इत्यादि का केंद्र भी होता है। आदिमानव ने जब अग्नि और पहिये की खोज की थी तो उसे यह नहीं मालूम रहा होगा कि ये मनुष्य के भावी जीवन के दो प्रमुख अंग होंगे। कहते हैं, आवश्यकता आविष्कार की जननी है। प्रकृति के रहस्यों को जानने की जिज्ञासा ने मानव को सबसे बुद्धिमान प्राणी के रूप में निरूपित किया। आगे चल कर इसकी बुद्धि को विज्ञान नामक नया दर्शन मिला। स्वयं को जानने की उत्कंठा ने मानव चेतना को एक नयी दिशा दी। मानव मस्तिष्क कैसे कार्य करता है यह एक ज्वलन्त प्रश्न के रूप में जीवनविज्ञान, भौतिक विज्ञान, गणित, और दर्शनशास्त्र में स्थान रखता है। इस मस्तिष्क ने जहां एक ओर सापेक्षता का सिद्धांत दिया एवं गीतांजलि की रचना की, वही परमाणु बम का भी निर्माण किया। एक उत्कृष्ट शोध-कार्य या साहित्य रचना में मस्तिष्क का योगदान सर्वोपरि है।

मस्तिष्क : एक परिचय :

मानव मस्तिष्क का अध्ययन एक व्यापक क्षेत्र है। मुख्यत: इसका अध्ययन तंत्रिका विज्ञान में किया जाता है। परंतु मनोविज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान, दर्शनशास्त्र, भाषाविज्ञान, मानवविज्ञान, एवं आयुर्विज्ञान इत्यादि में हो रहे शोधों ने इसके अध्ययन को एक नयी दिशा प्रदान की है। तंत्रिका तंत्र के शीर्ष पर स्थित यह अंग शरीर के सभी क्रियाओं को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित करता है। यह संरचनात्मक रूप में जटिल और क्रियात्मक रूप में जटिलतम होता है। इसकी संरचना, कार्य एवं इनके पारस्परिक संबंधों का अध्ययन मुख्यत: तंत्रिकाजैविकी मनोविज्ञान एवं कंप्यूटर विज्ञान में किया जाता है (चित्र - 1)।

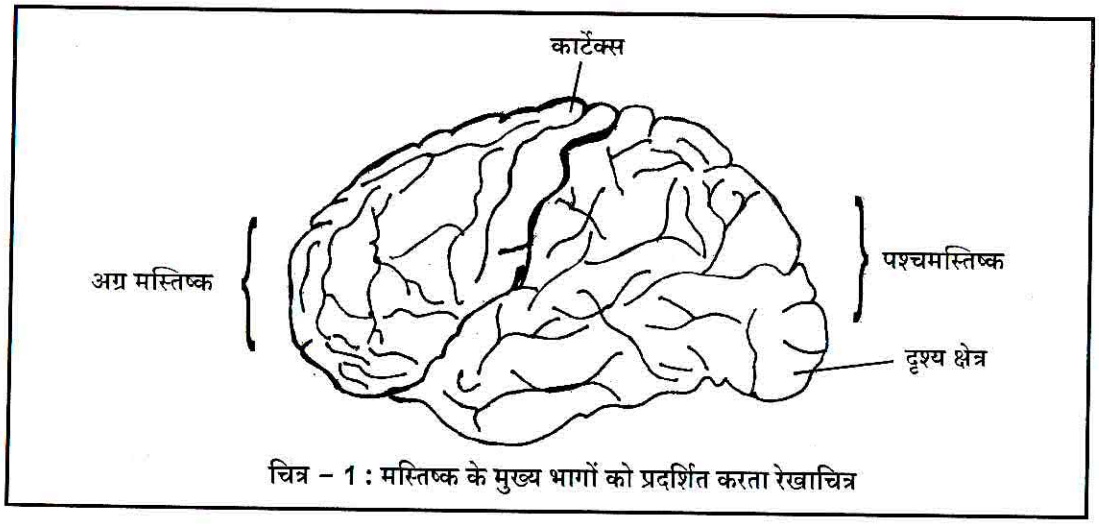

चित्र – 1 : मस्तिष्क के मुख्य भागों को प्रदर्शित करता रेखाचित्र

तंत्रिकाजैविकी – मस्तिष्क का जैविक आधार :

संपूर्ण ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है वह द्रव्य एवं ऊर्जा का संगम है। समस्त दृश्य एवं अदृश्य इन्हीं दोनों के विचित्र संयोग से घटित होता है। हम और हमारा मस्तिष्क इसके अपवाद नहीं है। सृष्टि के मूलभूत कणों के विभिन्न अनुपात में संयुक्त होने से परमाणु और क्रमश: अणुओं का निर्माण हुआ है। मस्तिष्क एवं इसके विभिन्न भाग, सूचनाओं के अदान-प्रदान, संचार एवं भंडारण के लिए इन्हीं अणुओं पर निर्भर रहते हैं। ये विशेष अणु न्यूरोकेमिकल कहलाते हैं।

मस्तिष्क एक विशेष प्रकार की कोशिकाओं से मिल कर बना होता है जिन्हें तंत्रिका कोशिका कहते हैं। ये मस्तिष्क की संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई है। इनकी कुल संख्या लगभग 1 खरब से भी अधिक होती है। संरचनात्मक रूप से मस्तिष्क के तीन मुख्य भाग होते हैं। ये हैं-अग्र मस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क, एवं पश्च मस्तिष्क। प्रमस्तिष्क एवं डाइएनसीफेलोन (Diencephalon) अग्र मस्तिष्क के भाग होते हैं। मेडुला, पोन्स, एवं अनुमस्तिष्क पश्च मस्तिष्क के भाग होते हैं। मध्य मस्तिष्क एवं पश्च मस्तिष्क मिल कर मस्तिष्क स्तंभ का निर्माण करते हैं। मस्तिष्क स्तंभ मुख्यत: शरीर की जैविक क्रियाओं एवं चैतन्यता का नियंत्रण करता है। प्रमस्तिष्क गोलार्ध प्रमस्तिष्क के दो सममितीय भाग होते हैं और आपस में मध्य में जुड़े होते हैं। इनकी सतह का भाग प्रमस्तिष्क वल्कुट कहलाता है। विभिन्न भागों की क्रियात्मक समरूपता वाली कोशिकाएं तंत्रिका संजाल (Neural Network) का निर्माण करती हैं। विभिन्न संजाल मिल कर एक प्रतिचित्र (Topographical Map) का निर्माण करते हैं (चित्र - 2) तथा (चित्र - 3)।

मस्तिष्क में प्रतिचित्र के स्तर पर शरीर के सभी अंगों का संरचनात्मक निरूपण होता है। मस्तिष्क का प्रमस्तिष्क वल्कुट का भाग समस्त संरचनात्मक निरूपण के लिए उत्तरदायी होता है। यह निरूपण प्रतिपार्श्विक (Contraleteral) अर्थात् शरीर सममिति के दाहिने अक्ष का निरूपण प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध के बांयी ओर एवं बांये अक्ष का निरूपण दाहिनी ओर होता है। यह निरूपण मुख्यत: जीन एवं वातावरण द्वारा निर्धारित होता है। चित्र में शरीर की विरूपता इसके विभिन्न भागों एवं अंगों के मस्तिष्क में निरूपित भाग को प्रदर्शित करती है। मस्तिष्क में इस निरूपण के चिकित्सकीय प्रमाण भी मिलते हैं। जब मस्तिष्क का कोई भाग चोट या अन्य किसी कारण से प्रभावित हो जाता है तो उससे संबंधित अंग या अंगतंत्र भी स्पष्टत: प्रभावित होता है। यह घटना प्राय: पक्षाघात (लकवा) के रूप में देखने को मिलती है।

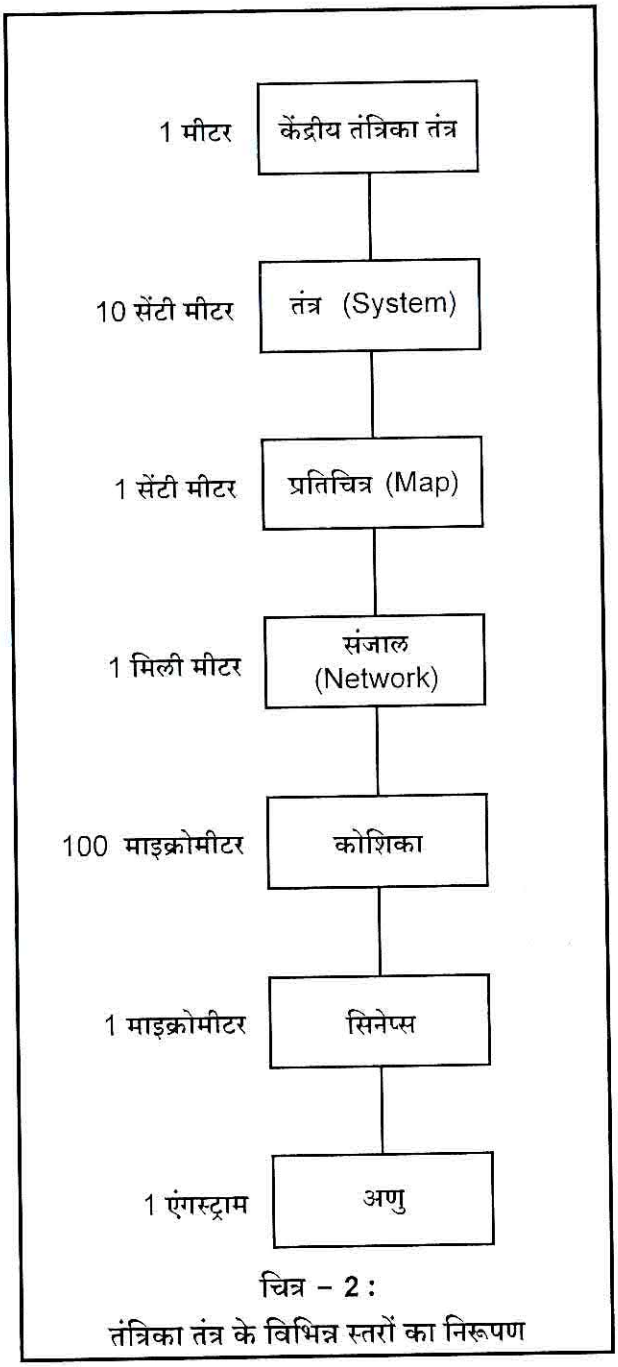

चित्र – 2 :
तंत्रिका तंत्र के विभिन्न स्तरों का निरूपण

मस्तिष्क में सूचना का संवहन :

तंत्रिका कोशिका ही सूचना संवहन की इकाई होती है। मुख्य रूप से तंत्रिका कोशिका कला (Neural Membrane) के बाहर और अंदर की घटनाएं ही उत्तरदायी होती हैं। कोशाकला के अंदर और बाहर सोडियम (Na^+) एवं पोटेशियम (K^+) आयन्स घुलनशील अवस्था में विद्यमान होते हैं। उद्दीपन की स्थिति में इन आयनों का संवहन सामान्य से विचलित हो जाता है और यह सतत् विचलन एक संवेग में परिवर्तित हो जाता है। विभिन्न उद्दीपनों की उपस्थिति में उनका समाकलन एवं योग भी

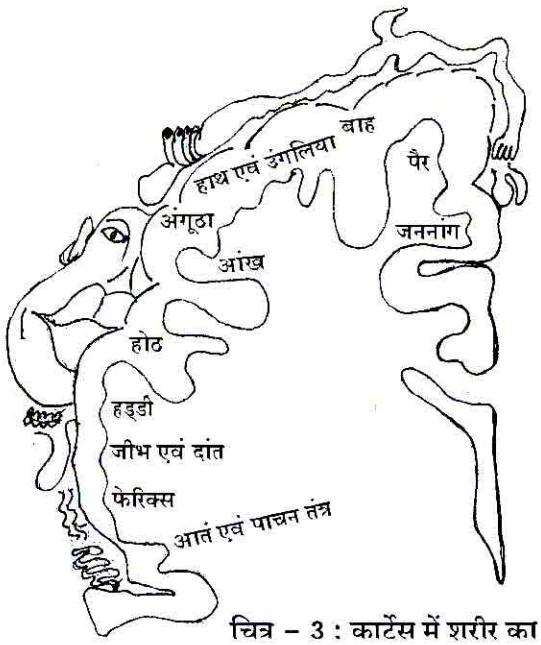

चित्र – 3 : कार्टेस में शरीर का संरचनात्मक निरूपण

होता है और यह उद्दीपन को कोड करने का कार्य करता है। यह संवेग कोशिका के एक सिरे से दूसरे सिरे तक संवहित होता है। दो तंत्रिका कोशिकाओं में संवेग संचरण न्यूरोकेमिकल के माध्यम से होता है। दो कोशाओं के सिरे आपस में सिनेप्स का निर्माण करतें हैं। एक वाहक कोशा से स्त्रावित न्यूरोकेमिकल दूसरी कोशा को आयनिक विचलन द्वारा उत्तेजित कर देता है। इस प्रकार संवेग का संचरण पूर्ण होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि मस्तिष्क में इन सभी संचरणों के फलस्वरूप क्या होता है।

मस्तिष्क में विभिन्न स्तरों पर इन सूचनओं का संकलन एवं परिमार्जन किया जाता है। उदाहरण के लिए हम दृश्य परिघटना को ले सकते हैं। किसी भी दृश्य का दिखाई देना उस पर पड़ रही प्रकाश किरणों के प्रत्यावर्तन के कारण होता है। इस प्रत्यावर्तित प्रकाश की किरणें जब हमारी रेटिना पर पड़ती हैं तो उस दृश्य का एक उल्टा एवं द्विविमीय प्रतिबिंब बनता है। (क्योंकि रेटिना एक द्विविमीय फोटोग्राफिक प्लेट की तरह कार्य करती है)। परंतु जब मस्तिष्क के दृश्य क्षेत्र में रेटिना द्वारा प्राप्त संकेतों की व्याख्या होती है तो हम एक वास्तविक त्रिविमीय दृश्य का अनुभव करते हैं। ऐसा मस्तिष्क में विभिन्न स्तरों पर संयोजन, परिमार्जन, एवं संसाधन के कारण होता है।

मस्तिष्क का क्रियात्मक प्रतिरूप :

मानसिक संक्रियाएं व्यवहार के रूप में परिलक्षित होती हैं, और व्यवहार मन से उत्पन्न होता है। मनोविज्ञान में मानसिक संक्रियाओं एवं व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। मन का अध्ययन सदैव एक अबूझ पहेली रहा है। सबसे कठिनतम तो इसे परिभाषित करना है। सामान्यतया मस्तिष्क की संक्रियाओं को मन के रूप में निरूपित करते हैं लेकिन यह संपूर्ण परिभाषा नहीं है।

अब हम यह देखेंगे कि मन के क्या कार्य होते हैं और उसमें मस्तिष्क का क्या योगदान है। मन का अर्थ हम सोचने, अनुभव करने एवं चाहने से लेते हैं। उदाहरण के लिए जब हम किसी कठिन प्रश्न को हल कर रहे होते हैं तो उस समय हम सभी संभावित विकल्पों को ध्यान में रखते हुए निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। और किसी पहलू पर हमारी सोच समग्रतात्मक (Holistic) होती है। संज्ञानात्मक क्रियाएं जैसे कि स्मृति, अधिगम, मेधा, ध्यान, दृष्टि, श्रवण, स्वाद, गन्ध, स्पर्श इत्यादि मन के विभिन्न प्रभाग होते हैं। उदाहरण के लिए त्वचा में उपस्थित ग्राही कोशाएं (Receptorcells) स्पर्श, सर्दी, गर्मी, दर्द एवं दबाव के उद्दीपन को ग्रहण करके मस्तिष्क में पहुँचने का कार्य करती हैं। आंतरिक कर्ण में (Inner Ear) उपस्थित ग्राही कोशाएं संतुलन एवं साम्यावस्था के लिए उत्तरदायी होती हैं। हमारी पेशियों एवं जोड़ों में स्थित ग्राही कोशाएं स्थिति एवं गति के लिए उत्तरदायी होती हैं।

उद्दीपन–संसाधन–अनुक्रिया तंत्र :

वातावरण एक उद्दीपक का कार्य करता है एवं हम इसे अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करते हैं। ज्ञानेन्द्रियां जिन सूचनाओं को मस्तिष्क तक पहुंचाती हैं वे परिवर्तन पर

आधारित होती हैं। उदाहरण के लिए कोई नयी घटना जैसे तेज शोर, तापमान में परिवर्तन, किसी वस्तु का अचानक दिखना, इत्यादि। लेकिन इसके बीच की घटनाएं प्रभावित नहीं करती। जैसे, कमरे में रेडियो चालू होते समय हम इसकी आवाज को महसूस करते हैं। फिर हम इसकी आवाज से अनुकूलित हो जाते हैं। पुन: रेडियो बंद होते समय हमारा ध्यान उधर जाता है क्योंकि ध्वनि का अभाव हो जाता है। इस प्रकार मध्य में अनुक्रिया अभाव को ऐन्द्रिक अनुकूलन कहते हैं।

हमारी ज्ञानेन्द्रियां बाहर के भौतिक एवं आंतरिक मनोवैज्ञानिक वातावरण को परस्पर जोड़ने का कार्य करती हैं। इन अंतर्संबंधों का अध्ययन मनोभौतिकी के अंतर्गत किया जाता है। भौतिकी की क्रियापद्धति और विधि को अपना प्रतिरूप मानते हुए शुरुआती दौर में यह निर्धारित किया गया कि भौतिक उद्दीपन की कम से कम कितनी मात्रा हमारे ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करती है। और इसे विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों के लिए उद्दीपन की प्रभाव सीमा कहा गया।

यह देखा गया है कि प्रभाव सीमा से कम तीव्रता का उद्दीपन ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित नहीं कर पाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा लायी गयी सूचना एवं उससे एक निष्कर्ष पर पहुंचने तथा उसके अनुरूप व्यवहार प्रदर्शित करने में एक सुन्दर लयबद्धता दिखाई पड़ती है।

मस्तिष्क का संज्ञानात्मक निरूपण :

संज्ञानात्मक निरूपण के लिए मस्तिष्क के विभिन्न भाग अलग-अलग एवं एक साथ उत्तरदायी होते हैं। उदाहरण के लिए देखने के लिए दृश्य क्षेत्र, सुनने के लिए श्रव्य क्षेत्र, गति के लिए अनुमस्तिष्क का क्षेत्र उत्तरदायी होता है। कभी-कभी विशेष ध्वनि के साथ किसी दृश्य की संकल्पना भी सामने आती है। ऐसा मस्तिष्क के विभिन्न हिस्सों के आपसी सहसंबंधों एवं पूर्ण विकसित क्रियात्मक संजाल के कारण होता है। मस्तिष्क के शोधों में विशेष रूप से एफ.एम.आर.आई. (Functional Megnetic Resonance Imaging) यंत्र तुलनात्मक रूप से नया है और बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

यह यंत्र मस्तिष्क के क्रियात्मक एवं संरचनात्मक दोनों तरह के निरूपण के लिए उपयुक्त होता है। किसी विशेष संज्ञानात्मक कार्य के लिए (उदाहरण के लिए दृश्य परिकल्पना) मस्तिष्क के एक विशेष संबंधित भाग की क्रियाशीलता बढ़ जाती है और उसके साथ ही उस भाग में ग्लूकोज एवं ऑक्सीजन की खपत भी बढ़ जाती है। इसके फलस्वरूप उस भाग में ऑक्सीहीमोग्लोबिन एवं कार्बाक्सी-हीमोग्लोबिन का संतुलन तुलनात्मक रूप से बदल जाता है। इन दोनों अणुओं के चुंबकीय गुण अलग होते हैं। चुंबकीय अनुनाद पर आधारित यह यंत्र इस परिवर्तन के आधार पर मस्तिष्क का एक स्पष्ट एव त्रिविमीय प्रतिबिंब निरूपित करता है जिसमें हम मस्तिष्क की क्रियाशीलता देख सकतें हैं।

मन, मस्तिष्क एवं स्वास्थ्य :

एक पुरानी कहावत है कि स्वस्थ शरीर में एक स्वस्थ मन का निवास होता है। वर्तमान समय में यह

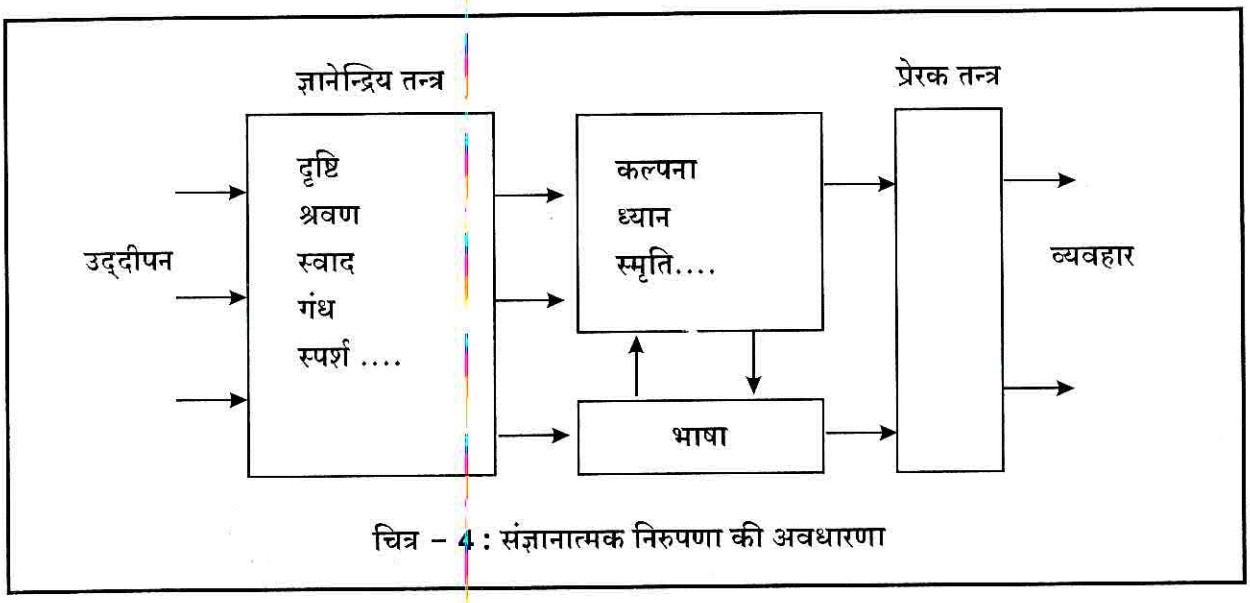

चित्र – 4 : संज्ञानात्मक निरुपणा की अवधारणा

कहावत बिलकुल सही सिद्ध हुई है एवं इसका दूसरा पक्ष भी उतना ही सही है। हमारा शारीरिक स्वास्थ्य बहुत सीमा तक हमारी मानसिक स्थितियों पर निर्भर करता है। तनाव, चिन्ता इत्यादि स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालते हैं और स्वस्थ मानसिक स्थिति शारीरिक स्वास्थ्य के अनुकूल होती है।

मनोतंत्रिकाप्रतिरक्षा विज्ञान (Psychoneuroimmunology) की समग्रतात्मक संकल्पना पूर्णत: इसी पर आधारित है। इसके अनुसार हमारे स्वास्थ्य के लिए हमारी मानसिक स्थितियां, मस्तिष्क, अन्त:स्त्रावी तंत्र एवं प्रतिरक्षा तंत्र सामूहिक रूप से कार्य करते हैं और ये सब आपस में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में जुड़कर समस्थापन (Homeostasis) का कार्य करते हैं। इनकी अंत:क्रिया हमारे स्वास्थ्य के रूप में परिलक्षित होती है।

स्वास्थ्य की यह संकल्पना कोई बहुत नयी नहीं है। हमारे पारंपरिक चिकित्साविज्ञान (आयुर्वेद) में शारीरिक स्वास्थ्य के लिए मानसिक शुचिता पर बल दिया गया है। योगविज्ञान में बताए गए प्राणायाम तथा आसन, मन एवं शरीर को स्वस्थ रखने के साधन कहे गये हैं। वर्तमान शोध भी इस बात की ओर इशारा करते हैं कि यौगिक आसन एवं प्राणायाम यदि सही विधि से एवं नियमित रूप से किये जाएं तो उनसे बहुत लाभ मिल सकता है।

कंप्यूटर विज्ञान: एक नयी दिशा :

पिछले अर्द्धशतक में कंप्यूटर के क्षेत्र में हुए विकास ने इसे शोध कार्य का आवश्यक अंग बना दिया है। लेकिन मस्तिष्क के शोध में इसका योगदान थोड़ा अलग है। हमारे मस्तिष्क को कंप्यूटर की संज्ञा दी जाती है। यह ज्ञात है कि कंप्यूटर के दो मुख्य प्रभाग हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेयर होते हैं। हार्डवेयर यंत्रात्मक एवं दृश्य भाग होता है एवं सॉफ्टवेयर यंत्रेत्तर भाग होता है और इसकी क्रियाविधि को निरूपित करता है। ठीक उसी प्रकार जैसे कि मस्तिष्क एक जैविक संरचना है और मन इसका क्रियात्मक निरूपण है। परंतु यह उपमा कहीं-कहीं ही उपयोगी सिद्ध होती है।

कंप्यूटर को मुख्यत: सूचना संसाधन का पर्याय माना जाता है। ऐसा देखा गया है कि हमारे संज्ञानात्मक तंत्र की क्रियाविधि बहुत सीमा तक गणितीय होती है। पूर्ववर्णित उद्दीपन-अनुक्रिया तंत्र की क्रियाविधि कंप्यूटर विज्ञान पर आधारित है।

मस्तिष्क के इस नये दर्शन का आरंभ 1956 के दशक में एम.आई.टी. में हुआ था। बाद के वर्षों में रूमेलहार्ट (Rumelhart) एवं मैकक्लीलैण्ड (Mc Clelland) ने इस विचारधारा का पोषण किया एवं मानव संज्ञान की नयी कृत्रिम संयोजी नेटवर्क की संकल्पना प्रस्तुत की। यह अवधारणा मस्तिष्क के सूक्ष्म शारीरिकी से प्रेरित थी।

इनके अनुसार यह नेटवर्क कई छोटी-छोटी इकाइयों से मिल कर बना होता है। ये इकाइयां जैविक न्यूरॉन की तरह एक दूसरे से जुड़ी होती हैं। इन इकाइयों के एक या अधिक स्तर हो सकते हैं। विभिन्न उद्दीपनों की उपस्थिति में उनका संकलन एवं योग भी होता है।

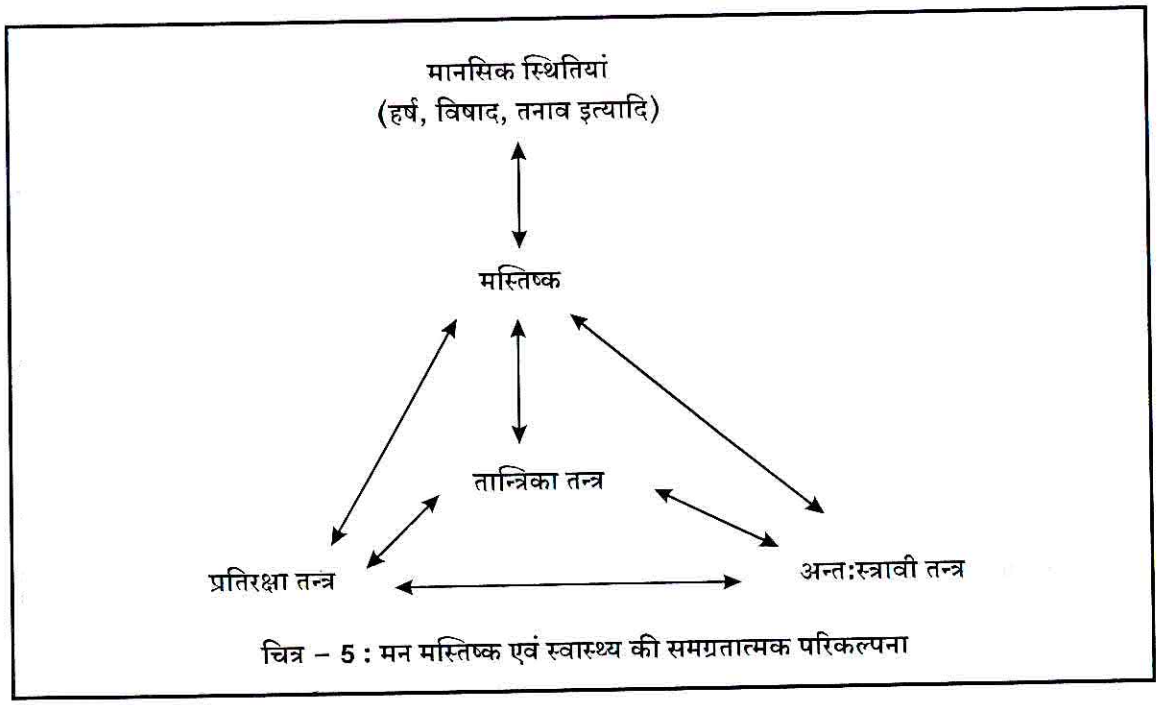

चित्र – 5 : मन मस्तिष्क एवं स्वास्थ्य की समग्रतात्मक परिकल्पना

क्रियाशीलता की स्थिति में उद्दीपन निवेशी इकाइयों (Input units) द्वारा ग्रहण किया जाता है एवं कोड किया जाता है। वहाँ से यह सक्रियता प्रतिरूप के रूप में नेटवर्क के अंदर के स्तरों की इकाइयों में समांतर रूप से वितरित हो जाता है। यह इकाइयां स्वतंत्र रूप में एक गणना का कार्य करती हैं एवं सामूहिक रूप में सूचना संसाधन का कार्य करती हैं।

अंत में निर्गत इकाइयां निर्गत प्रतिरूप (Output Pattern) के रूप में व्यवहार प्रदर्शित करती हैं। इस प्रकार हम देखते है कि रूमेलहार्ट द्वारा प्रदर्शित संयोजी नेटवर्क, उद्दीपन व्यवहार तंत्र की उचित व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसको मनोविज्ञान एवं कंप्यूटर विज्ञान का आदर्श प्रतिरूप माना जाता है।

पिछले दशकों में इस दिशा में कई अनुप्रयोगात्मक शोध हुए हैं। सेजनोवस्की एवं रोसेनबर्ग ने 1987 में नेटटॉक (NETTalk) नाम का यंत्र बनाया था जो कि संयोजी नेटवर्क पर आधारित था। यह अंग्रेजी के निवेशी शब्दों को संभाषण में निरूपित कर सकता था।

कृत्रिम बुद्धि एवं उसका अनुप्रयोग :

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विशेष तौर पर तंत्रिका एवं कंप्यूटर विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे शोधों ने कृत्रिम बुद्धि की नयी अवधारणा को जन्म दिया। कृत्रिम बुद्धि से हमारा तात्पर्य मानव द्वारा विकसित एक ऐसी रचना से है जो बुद्धि में मानव की बराबरी कर सके।

यह एक गहन चिंतन का विषय है कि क्या कंप्यूटर मानसिक क्षमताओं में मानव की बराबरी कर सकता है। यह सत्य है कि कम्प्यूटर कुछ मामलों में मानव से ज्यादा समुन्नत है। स्मृति भण्डारण क्षमता, यथार्थता, एवं प्रतिक्रिया समय के मामलों में यह बहुत आगे है। बुद्धि की परिभाषा चिन्तन, मनन, एवं सृजनात्मकता को ध्यान में रख कर दी जाती है। वर्तमान में कंप्यूटर द्वारा एक सीमा तक उपरोक्त कार्य किये गये हैं। परंतु यह कहना उचित नहीं होगा कि कृत्रिम बुद्धि अपनी सीमा तक विकसित है।

रोबोट विज्ञान में कृत्रिम बुद्धि का सबसे अधिक अनुप्रयोग होता है। डीप ब्लू नाम के ऐस ही कंप्यूटर ने गैरी

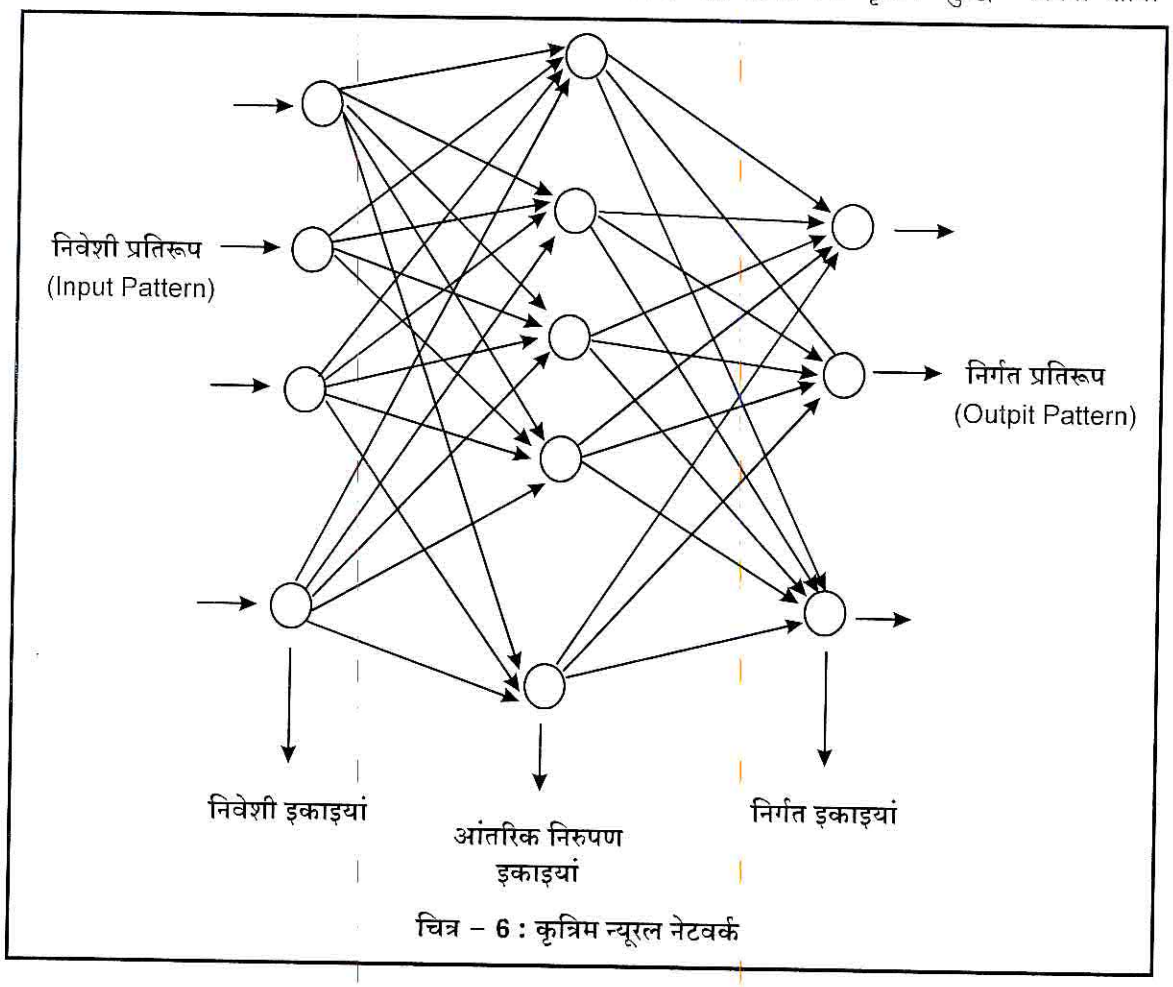

चित्र – 6 : कृत्रिम न्यूरल नेटवर्क

कास्परोव को शतरंज में पराजित किया। इसके अन्य उपयोग चिकित्सा विज्ञान एवं खगोलशास्त्र में भी हैं।

मस्तिष्क में व्याप्त संभावनाएं :

मस्तिष्क का अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रकृति की एकमात्र रचना है जिसमें प्रकृति को प्रभावित करने की क्षमता होती है। वास्तव में प्रकृति के साथ इसका संबंध द्विदिशात्मक होता है। अर्थात यह अंग प्रकृति से प्रभावित होने के साथ ही प्रकृति को प्रभावित भी करता है।

मस्तिष्क का अध्ययन अंतर्विषयक है। विभिन्न विषयों के वैज्ञानिकों ने अलग-अलग कार्य करते हुए यह देखा कि कहीं वे एक ही प्रश्न का उत्तर खोज रहे हैं। उदाहरण के लिए, भाषा विज्ञान में भाषा का उत्पत्ति स्थान और भाषा एवं विचार में संबध, मनोविज्ञान में मन का भौतिक निरूपण, कंप्यूटर विज्ञान में सूचना संसाधन की उचित व्याख्या एवं दर्शनशास्त्र में भौतिक एवं मानसिक जगत से सबंधित प्रश्न एक मुख्य प्रश्न' मस्तिष्क कैसे कार्य करता है' पर आधारित हैं।

चेतना के केंद्र के रूप में भी मस्तिष्क ने वैज्ञानकों का ध्यान आकर्षित किया है। भौतिकी का सबसे मूलभूत प्रश्न है कि चेतना की वास्तविक उत्पत्ति कहां से होती है।

मस्तिष्क के संदर्भ में चेतना से हमारा तात्पर्य चैतन्यता या अनुभव से हो सकता है। हम किसी भी चीज का अनुभव कैसे करते हैं। इस प्रश्न का उत्तर कोई सामान्य विद्यार्थी दे सकता है कि वातावरणीय उद्दीपन के फलस्वरूप होने वाली मस्तिष्क संक्रियाएं (जो कि वैद्युतरासायनिक परिवर्तन एवं न्यूरोकेमिकल परिवर्तन पर आधारित होती हैं) हमारे सारे अनुभवों के लिए उत्तरदायी हैं। बात सही भी है। परंतु यदि हम अपने सारे अनुभवों एवं चेतना को आणविक संक्रिया के रूप में प्रदर्शित करें तो भी यह प्रश्न शेष रहता है कि इन अचेतन एवं निर्जीव अणुओं की अंत:क्रिया एक सजीव रूप कैसे धारण कर लेती है।

एक संभावित उत्तर हो सकता है कि बहुत सारे अणुओं के विकासात्मक एवं सामूहिक गुण चेतना के रूप में परिलक्षित होते हैं। लेकिन यदि ऐसा है तो एक अकेले अणु में भी प्रारंभिक स्तर की चेतना होनी चाहिए। अंतत: यह प्रश्न अभी भी अनुत्तरित है। यह प्रश्न एकल विषयक न हो कर विशुद्ध विज्ञान का है। अब देखना है कि भविष्य में विज्ञान इस पर कितना प्रकाश डाल पाता है।

मस्तिष्क संबंधी कुछ आधारभूत तथ्य

1. मस्तिष्क को प्रकृति की सबसे जटिलतम जैविक संरचना मानते हैं। इसका वजन लगभग तीन पौड यानी करीब 1300 से 1400 ग्राम होता है।
2. मस्तिष्क की कुल कोशिकाओं की संख्या लगभग 1 खरब से भी अधिक होती है। मस्तिष्क की लंबाई 167 मिमी., मोटाई 140 मिमी. तथा ऊंचाई 93 मिमी. हो सकती है। इसके सतह का क्षेत्रफल 2500 वर्ग सेमी. यानी करीब 2.5 वर्ग फुट होता है।
3. इन कोशिकाओं का केंद्रक आजीवन इंटरफेज अवस्था में रहता है। अत: ये कभी विभाजित नहीं होती। अतएव इनकी संख्या जितनी जन्म के समय होती है, उतनी आजीवन बनी रहती है। इनमें पुनरूद्भवन भी नहीं के बराबर होता है। अत: मस्तिष्क की एक सामान्य - सी चोट भी आजीवन प्रभाव डालती है।
4. मस्तिष्क शरीर का सबसे क्रियाशील अंग होता है। अत: अन्य अंगों की तुलना में ऊर्जा की खपत इसमें बहुत ज्यादा होती है। ऊर्जा के स्रोत मुख्य रूपेण ऑक्सीजन तथा ग्लूकोज होते हैं।
5. मस्तिष्क को रक्त आपूर्ति में 8-10 सेकेंड की बाधा स्थायी रूप से प्रभावित कर सकती है।
6. मस्तिष्क में पूरे शरीर की अनुभूति का निरूपण होता है। परन्तु मस्तिष्क की स्वयं की अनुभूति का स्थान कहीं नहीं होता। अत: शरीर में किसी भी उद्दीपन का पता हमें मस्तिष्क के द्वारा पता चलता है लेकिन अगर मस्तिष्क को कोई हानि हो तो हमें उसका अनुभव नहीं होतो।
7. मस्तिष्क एवं तंत्रिका संबंधी रोगों (चोटों, नशीली दवाइयों तथा मनोवैज्ञानिक कारणों) की संख्या करीब 1000 से भी ज्यादा है जो बाकी सभी बीमारियों में सबसे अधिक है।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2006) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

पारंपरिक ज्ञान और दातौन

नरेश चन्द्र तिवारी, तकनीकी अधिकारी,
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ – 226 001.

आज भी ग्रामीण क्षेत्रों व कस्बाई शहरों में दंत सफाई हेतु दातौन का प्रयोग प्रमुखता से किया जा रहा है। दातौन से दंत की सफाई के साथ-साथ कई दंत रोगों से भी मुक्ति मिलती है। प्रस्तुत लेख में इसी प्रसंग पर विस्तृत चर्चा की गयी है। साथ ही साथ देश के विभिन्न भागों में अपनाये गये दातौनों तथा उनसे मिलने वाले लाभों पर प्रकाश डाला गया है। अंत में,आम तौर पर प्रयोग होनेवाले कुछ चुनिंदा दातौनों के गुणधर्मों को संकलित किया गया है।

सूचना प्रौद्योगिकी के युग में भले ही जीवन बसर कर रही युवा पीढ़ी दातौन का नाम सुनते ही कंधे उचकाने लगे, पर आज भी देश के ग्रामीण और वनांचलों में दिन का आरंभ दातौन से ही होता हैं। आमतौर पर नीम तथा बबूल की दातौन सर्वत्र सुलभ होने के करण अधिक प्रचलन में है। पर देश के विभिन्न भागों में सैकड़ों वनौषधियों के विभिन्न भागों को दातौन के रूप में उपयोग करने के प्रमाण मिलते हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य विशेषकर वैदिक कर्मकांड तथा चिकित्सा संबंधित साहित्य में अनेक प्रकार की दातौन के आदिकालीन प्रयोगों के उल्लेख मिलते हैं। पुराणों तथा स्मृतियों में कहा गया है कि. 'अपामार्ग, बेल, आक, नीम, खैर, मूलर, करंज, अर्जुन, आम, साल, महुआ, कदंब , बेर, कनेर व बबूल आदि वृक्षों की दातौन करनी चाहिए। (देवी भागवत, 11/2-36; नरसिंह पुराण, 58/47-48; विश्वामित्र स्मृति, 1/61-63; लघुहारीत स्मृति, 4/6-8) । लघुहारीत स्मृति (4/9) नरसिंह पुराण (58/49) में कहा गया है कि 'दूधवाले तथा कांटे वाले वृक्ष दातौन के लिए पवित्र माने गये हैं।' बृद्धहारीत स्मृति (61), गरुड़पुराण, आचार (205/50); चरक संहिता (सूत्र 5/71); अष्टांग हृदय (सूत्र 2/2) में कहा गया है कि कषाय तिक्त अथवा कटु रसवाली दातौन आरोग्यकारक होती है। इसी तरह प्राचीन ग्रन्थों में सही दातौन के चयन, दातौन करने की विधि तथा निषेधों का भी उल्लेख मिलता है।

'हरितसंहिता' को ईस्वी सन् बाद छठी शताब्दी की रचना मानी जाती है। इस प्रसिद्ध ग्रन्थ के अध्याय 4.5 में कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य को प्रात: काल उठ कर सबसे पहले अपने मुख तथा दांतों की भलीभाँति सफाई करनी चाहिए। इसी ग्रन्थ के अध्याय 4.6 से 4.8 में उन वनस्पतियों का उल्लेख किया गया है जो दांतों के लिए लाभकारी हैं। पोंगामिया पिन्नाटा (करंज), अकेसिया कटेचू (खैर,कत्था), एन्थोसिफॅलस कदंबा (कदंब), डेस्मास्टाचिया बाइपिन्नाटा (कुश, दाम), आल्सटोनिया स्कोलेरिस (सप्तपर्णी, सतविन); यूरारिया लेगोपोयडेस (वृश्निपर्णी, पिठवन, पिठोनी, पितवन), सिजीज़ियम कुमुनी (जामुन); अजेडिरेक्टा इण्डिका (नीम), एकाइरेन्थीज़ एस्पेरा (लटजीरा, अपामार्ग),इगिल मारमिलोस (बेल), कैलोट्रोपिस जिजैन्सिया (आक, मदार) तथा फाइकस रेसीमोसा (उदुँबर) को दांतों तथा मसूड़ों के लिए लाभ कारी बताया गया है। अध्याय 4.9'अ' में सोलेनम जैन्थोकार्पम (कटेरी, छोटी कटाई, कंटकारी) तथा प्लूमेरिया एक्यूटीफोलिया (सोन चम्पा, खैर चम्पा) की दातौन को दांतों के लिए गुणकारी कहा गया है।

हमारे धार्मिक ग्रंथों में कहा गया है कि महुआ की दातौन से पुत्र लाभ होता है। आक की दातौन करने से नेत्रों को सुख मिलता है। बेर की दातौन करने से मनुष्य दुष्टों पर विजय पाता है। बेल और खैर की दातौन से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। कदंब से रोगों का नाश होता है। अतिमुक्तक (कुंदका एक भेद) से धन की प्राप्ति होती है। अडूसा की दातौन से सर्वत्र गौरव की प्राप्ति होती है। जाती (चमेली) की दातौन करने से जाति में प्रधानता होती है। पीपल यश देता है। शिरीष की दातौन करने से सब प्रकार की संपत्ति प्राप्त होती है। इससे ज्ञात होता है कि हमारे प्राचीन मनीषी दातौन के महत्त्व से भली भाँति परिचित थे। अत: इसे धर्म तथा वैदिक संस्कृति से जोड़ दिया (उक्त वर्णन 'स्कन्द पुराण', प्रभास 17/8-12 में वर्णित है)।

निरंतर बदल रहे परिवेश के कारण अनेक वनौषधियों की दातौनों के विषय में पारंपरिक ज्ञान अब धीरे धीरे समाप्त होता जा रहा है और दातौन का अभिप्राय नीम और बबूल की दातौन तक ही सीमित रह गया है। औषधीय गुणों से युक्त परंपरागत दातौनों का स्थान बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा निर्मित 'टूथपेस्ट' ने ले लिया है।

आकाशवाणी तथा टी.वी. चैनेलों द्वारा प्रसारित विज्ञापनों को सुनकर नयी पीढ़ी अचंभित होती है कि आखिर यह वज्रदंती क्या है ? प्रकृति ने वज्रदंती नामक वनस्पति को हमारे आसपास उगाया है ताकि रोज सुबह घर के बाहर कदम रखते ही दातौन के रूप में इसके उपयोग में असुविधा न हो। वज्र के समान दांतों को सुदृढ बनाने का दमखम वज्रदंती के अतिरिक्त बहुत सी अन्य वनस्पतियों में भी है।

वनौषधियों तथा प्रकृति से प्राप्त होने वाली दातौन के उपयोग में दक्ष पारंपरिक चिकित्सक इसके प्रभावों की पुष्टि करते हैं। यदि पारंपरिक चिकित्सकों के दृष्टिकोण से देखा जाय तो दातौन के लाभ केवल दांतों और मुख रोगों तक ही सीमित नहीं हैं । वे कई प्रकार की ऐसी दातौन के विषय में जानकारी रखते हैं जिनका उपयोग मधुमेह (डायबीटीज) जैसी व्याधियों में 'सहायक उपचार' के रूप में किया जाता है। औषधीय वृक्ष अंकोल की दातौन ऐसे ही दिव्य गुणों के कारण लोकप्रिय हुई है। ग्रामीण अंचलों में लोग प्रात: उठते ही शौच के लिए जब खेतों की ओर जाते हैं तो रास्ते में उग रही वनस्पतियों के पौध भागों विशेषकर कोमल टहनियों का उपयोग दातौन के रूप में करते हुए वापस लौटते हैं। बहुत से पारंपरिक चिकित्सकों का मानना है कि शरीर की क्रियाशील अवस्था में दातौन करने से शरीर की क्रियाशीलता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्रात:काल दातौन करने से पेट साफ रहता है तथा व्यक्ति स्वयं को स्फूर्ति से भरा अनुभव करता है। ये तत्कालिक प्रभाव ही सामान्य जन को दातौन करने के लिए प्रेरित करते हैं।

छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र के पारंपरिक चिकित्सक बहुत सी ऐसी दातौन के विषय में जानकारी रखते हैं जिनका विशेष समय में उपयोग मनुष्य की काम शक्ति को बढ़ाती है। पुराने समय में ऐसी दातौन राजाओं को उपहार के रूप में दी जाती थी। आज के आधुनिक युग में ऐसी दातौन तो दूर, इनके स्रोत पौधों को खोज पाना ही दुष्कर कार्य है। मेहंदी के उपयोग से केशों की देखभाल प्राचीन काल से ही की जाती रही है लेकिन झारखण्ड के मध्य क्षेत्र के एक पारंपरिक चिकित्सक के अनुसार मेहंदी की टहनियों की दातौन करने से सिर के बाल धीरे धीरे काले हो जाते हैं। मेहंदी की दातौन से बालों के विकास का संबंध तो प्राचीन चिकित्सकीय ग्रंथों में भी नहीं मिलता है। देश के ग्रामीण अंचलों में मेहंदी की दातौन का उपयोग कोई नयी बात नहीं है। यह अलग बात है कि आम लोग इसके चमत्कारिक प्रभाव विशेषकर बालों के विकास से संबंधित प्रभावों के विषय में नहीं जानते हैं।

हानिकारक रबर पतवारों के रूप में विदेशों से आई अनेक वनस्पतियों को भी, अब दातौन के रूप में इस्तेमाल किया जाने लगा है। एक ओर वैज्ञानिकों ने जहां लॅन्टाना का उपयोग प्लाईवुड के निर्माण में करने का तरीका खोजा है वहीं उर्वर मस्तिष्क वाले ग्रामीणों ने भी इसे उपयोग में लाने की अनेक विधियां खोज निकाली हैं। इसके अन्य उपयोगों के अतिरिक्त ग्रामीण अंचलों में इसकी दातौन का उपयोग होने लगा है। आम लोग इसे मुंह के छालों के लिए विशेष उपयोगी मानते हैं। प्राकृतिक परिस्थितियों में आम लोगों द्वारा किया जा रहा इस तरह का प्रयोग प्रेरणाप्रद कहा जा सकता है।

वर्तमान पीढ़ी के बहुत से लोग दातौन का उपयोग करना चाहते हैं पर टूथब्रश से दांतों और मसूड़ों की सफाई ने उसके दांतों मसूड़ों को इतना कमजोर बना दिया है कि दातौन चबाना अब उनके बस की बात नहीं रह गयी है। दातौन का उपयोग जहां हमें दंतरोगों से बचाता है वहीं आज का आधुनिक उपचार एक बार आरंभ होते ही कभी न समाप्त होने वाला उपचार बन जाता है और कुछ अंतराल के बाद ही आम लोगों को दंतविशेषज्ञों के पास जाना जरूरी हो जाता है।

आम शहरी नागरिकों की अपेक्षा ग्रामीणों, आदिवासियों तथा जनजातियों को ऐसे पेड़ पौधों की अधिक जानकारी है जिन्हें दांतों तथा मसूड़ों की सुरक्षा व देखभाल के लिए दातौन तथा औषधि के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश के सभी भागों में नीम, बबूल तथा लटजीरा की दातौन अधिक लोकप्रिय है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में इनकी दातौनों का ही अधिक उपयोग होता है। दंत शूल तथा मसूड़ों में कष्ट होने पर पूर्वी उत्तर प्रदेश के स्थानीय ग्रामीणों, जनजातियों (थारू) तथा यायावरों

(नट एवं बंजारा) द्वारा अकेसिया निलोटिका उपजाति इण्डिका (बबूल, कीकर); बार्लेरिया क्रिस्टाटा (पियाबांस, कटसरैया); ब्यूटिया मोनोस्पर्या (ठाक, पलाश, टेसू, परास); कैलोट्रापिस प्रोसेस (आक, मदार, रक्तार्क); क्लेरोडेण्ड्रम मल्टीफ्लोरम् (भण्टवास), काडिया गराफ (गोंदी, लसोड़ा की एक जाति); इलेफैनटोपस स्कैबर (गोमी, गोजिडा, झुमका); हेयीडेस्मस इण्डीकस (अनंतमूल, कपूरी); हिपटिस सुवाबियोलेंसं (बन तुलसी); जैट्रोफा गौस्सीपीफोलिया (भरेण्डा, बनरेन); स्माइलैक्स जिलेनिका (राम दातून) तथा स्ट्रैब्लुस एस्पर (दहिया, सियोरा, सीहूर) आदि की टहनियों को दातौन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

आयुर्वेदिक साहित्य के अनुसार भी बार्लेरिया क्रिस्टाटा (पियाबांस, कटसरैया) दांतों की तकलीफों में उपयोगी है। दांत हिलते हों तो नीले फूलों वाली कटसरैया बार्लेरिया क्रिस्टाला की पत्तियों के कवाथ (काढ़ा) से गण्डूष (गरारा) कराते हैं। दंतशूल में नमक के साथ पत्तियों का लेप मसूड़ों पर लगाते हैं।

उत्तर प्रदेश के लगभग सभी भागों में दांतों व मसूड़ों में होने वाले जीवाणुओं के संक्रमण, दंतशूल तथा मसूड़ों की तकलीफों से छुटकारा पाने के लिए लटजीरा (एकीरैन्थीज़ी ऐस्पेरा); नीम (अजेडिरेक्टा इण्डिका); श्वेतार्क या सफेद फूलों वाली आक (कैलोस्ट्रोपिस जिजॅन्सिया); सहजन (मोरिंगा ओलीफेरा) तथा निर्गुण्डी (वाइटेक्स नेगुण्डो) की दातौन भी इस्तेमाल की जाती है।

पाण्डिचेरी के निवासी भी नीम के दातौन का उपयोग अधिक करते है। राजस्थान के राजसमंद जनपद के आदिवासी तथा ग्रामीण जन शरीफा (एनोना एक्वामोसा) की टहनियों का उपयोग पायरिया के उपचार के लिए दातौन के रूप में करते हैं। ये लोग दंतशूल के निवारण के लिए अनार (प्यूनिका ग्रेनेटम) की पत्तियों को नमक के साथ पीस कर उबालते हैं और इस क्वाथ से गण्डूष (गरारा) करते हैं। कड़वी तरोई (लूफ़ा एक्यूटैंगुला) के बीजों को पीस कर उसका रस कानों में डालते हैं जिससे दांतों के कीड़े निकल जाते हैं।

गुजरात के कच्छ जिले में पच्छम पर्वतों पर निवास करने वाले आदिवासी तथा ग्रामीण जिल ातौन (इण्डिगोफेरा ऑब्लीगीफोलिया) की टहनियों को दातौन के रूप में इस्तेमाल करते हैं। उत्तरी गुजरात के जिलों में निवास करने वाले अनेक आदिवासी समुदायों के लोग दांतों की तकलीफों को दूर करने के लिए लटजीरा अर्थात् अपामार्ग (एकीरॅन्थीस ऐस्पेरा) की ताजी तथा कोमल टहनियों को दातौन के रूप में प्रयुक्त करते हैं। दक्षिणी गुजरात के समुद्रतटीय क्षेत्रों में रहने वाले लोग दातों में दर्द होने पर नीलकमल (निम्फिया स्टेलेटा) की ताजी पत्तियों के रस को दांतों पर मलते हैं।

महाराष्ट्र में लोग भुजबल (सेनेसियो बामबियेन्सिस) की पत्तियों के रस को दातों की तकलीफों तथा मसूड़ों से बहने वाले रक्त के उपचार तथा दांतों को सुदृढ़ बनाने के लिए दांतों व मसूड़ों पर मलते हैं। इनकी पत्तियों को दांतों को मजबूत बनाने के लिए चुईंगम की भांति भी चूसते हैं।

सिक्किम के आदिवासी दांतों में दर्द होने पर एकीरैन्थीज़ बाइडेण्टैटा (लाल लटजीरा, लाल मोंगा) की जड़ को दातौन के रूप में उपयोग करते हैं। दंतशूल में ये लोग डलिफ़नियम डेनुडेटम (निरबीसी) तथा बर्जीनिया सिलियेता (परवनबेड) की सूखी जड़ों को चूसते हैं। दांतों में दर्द होने पर ऑस्बेकिया क्रिनिटा की पत्तियों के काढ़े से गरारा करने के साथ-साथ मुख की सफाई करते हैं। दंतशूल होने पर इस झाड़ीदार पौधे की सूखी पत्तियों के चूर्ण को मंजन की तरह इस्तेमाल करते हैं।

छत्तीसगढ़ के ग्रामीण तथा आदिवासी दांतों में दर्द होने पर फ्लेमिंगिया वाइटियाना की टहनियों को दातौन के रूप में इस्तेमाल करते हैं । इसके लिए एक सप्ताह तक दिन में दो बार इसकी दातौन करते हैं। दंतशूल में यह लोग स्माइलैक्स प्रोलीफेरा (राम दातौन) की टहनियों को दातौन की तरह इस्तेमाल करते हैं। स्पाइलेन्थीज़ पैनीकुलेटा फ(पारा क्रेस) की टहनियों को भी यह लोग दातौन की तरह इस्तेमाल करते हैं। दांतों में दर्द होने पर ये लोग इस पौधे की दातौन को दो सप्ताह तक प्रतिदिन दो बार करते हैं। दंतशूल तथा मसूड़े व गले में संक्रमण होने पर लोग इसकी पत्तियों को चबाते हैं। स्टरकुलिया यूरेन्स (गुलू, कतीरा) वृक्ष की टहनियों को भी ये लोग इस वृक्ष की दातौन दिन में दो बार 10-15 दिन तक करते हैं।

आंध्रप्रदेश के अनंतपुर जनपद के गूटी वनक्षेत्र के सुगाली आदिवासी दांतों तथा मसूड़ों में तकलीफ होने तथा पायरिया के उपचार के लिए बबूल (अकेसिया निलोटिका उपप्रजाति इण्डिका) की ताजी छाल को स्वच्छ जल में उबाल कर क्वाथ तैयार करते हैं और एक सप्ताह तक प्रात:काल तीन बार इस क्वाथ से गरारा करते हैं। आंध्रप्रदेश के गुन्डला ब्रह्मेश्वरम्, अभ्यारण्य में रहने वाले आदिवासी अपने दांतों की सुरक्षा के लिए कोलामुखी (होलेरिना पूबेसेन्स) की दातौन करते हैं।

केरल राज्य के इडुक्की जनपद में पेरियार टाईकर अभ्यारण्य हैं जिसमें पांच जनजातियां निवास करती हैं। ये लोग दांतों की सुरक्षा के लिए सरफ़ोका की एक जाति टेफ्रोसिया प्लचेरिमा तथा मीठा इन्द्रजौ (राइटिया टिंकटोरिया) की दातौन करते हैं। ये लोग टेफ्रोसिया प्लचेरिमा की ताजी पत्तियों का रस निकाल कर रोगग्रस्त दांतों पर मलते हैं। राइटिया टिंकटोरिया की पत्तियों से निकलने वाले दूध को यह लोग संक्रमित दांतों-मसूड़ों पर लगाते हैं।

पश्चिमी घाट की अट्टापड़ी पहाड़ियों पर रहने वाली जनजातियां लटजीरा (एकीरॅन्थीस ऐस्पेरा) की जड़ों तथा सफेद मदार (कैलोट्रापिस जिजैन्सिया) की टहनियों को दातौन के रूप में प्रयुक्त करते हैं। दांतों में दर्द होने पर भी इस जनजाति के लोग इन दोनों पौधों की दातौनों को ही इस्तेमाल करते हैं। पिनवैली नेशनल पार्क, लाहुल स्पीती, हिमाचल प्रदेश में रहनेवाली जनजातियां दांतों में दर्द होने पर फ़ाइसोक्लेना प्रीएल्टा (मडू) के बीजों को पीस कर दांतों पर लगाते हैं और इसके चूर्ण को मंजन की भांति प्रयोग करते हैं।

उड़ीसा की पूर्वी घाटी के क्षेत्र, महेन्द्र गिरि पहाड़ियों के गजपति जिले में रहने वाले स्योरा आदिवासी तुंबुरू अर्थात् तेजफल (जॅन्थोजाइलम अरमेटम) की दातौन को अपने दांतों तथा मसूड़ों को मजबूत करने के लिए करते हैं। साथ ही दंतशूल होने पर इस पौधे के तने की छाल के चूर्ण को मंजन की भांति दांतों के छिद्रों में भरने तथा हिलते हुए दांतों को स्थिर करने के लिए उपयोग करते हैं। दांतों में दर्द होने पर यह लोग आर्डीसिया सोलेनेसिया (कदना बन्जम) के तने की छाल के चूर्ण को मंजन की भांति उपयोग करते हैं।

उड़ीसा में गाये जाने वाले लोकगीतों में भी दांतों की सुरक्षा तथा देखभाल को महत्त्व दिया गया है तथा इनमें ऐसी वनस्पतियों का वर्णन किया गया है जो दांतों की सुरक्षा तथा देखभाल के लिए उपयोगी हैं। यथाएकीरॅन्थीज़ एस्पेरा (अपामार्ग, लटजीरा) की जड़, स्माइलेक्स जिलेनिका (रामदातून) की टहनियां, मैन्जीफेरा इण्डिका (आम) की पकी हुई तथा गिरी हुई पत्तियां, स्ट्रेब्लुस एस्पर (सियोरा) की टहनियां, दातौन के लिए सोरिया रोबस्टा (साल) की टहनियां; सीजिज़ियम कुमुनी (जामुन) की दातौन, ब्रिनिया विटिस की दातौन तथा गांसिपियम आरबोरियम (कपास) की दातौन; रामदातौन (स्माइलेक्स जिलेनिका) की दातौन दांतों को भली प्रकार साफ करती हैं।

भारतीय दातौन के चमत्कारिक प्रभावों से पूरा विश्व अभिभूत है। अंग्रेजी शब्दकोश में दातौन को शामिल करने के प्रयास किये जा रहे हैं लेकिन सटीक शब्द नहीं मिल पा रहा है। अब समय आ गया है कि दातौन के उपयोग की शताब्दियों पुरानी प्राचीन विद्या को पुनर्जीवित किया जाये तथा परंपरागत भारतीय ज्ञान को संभाल कर रखा जाए। वर्तमान पीढ़ी को दातौन के परंपरागत ज्ञान से परिचित कराना अब समय की आवश्यकता है। अभी भी सैकड़ों प्रजाति के वृक्षों से मिलने वाली दातौन के विषय में पारंपरिक ज्ञान आम लोगों, ग्रामीणों तथा आदिवासियों के पास सुरक्षित है। दातौन की अनदेखी कहीं कालान्तर में हमें आकर्षक पैकेटों में बंद विदेशी टूथपेस्ट उत्पादों के रूप में उन्हें सदैव खरीदते रहने के लिए विवश न कर दें और हमारे पास दातौन नाम की कोई भी चीज़ न रह जाये।

हमारे पास आज उपलब्ध वृक्षों, झाड़ियों तथा अन्य पौधों से मिलने वाली नि:शुल्क दातौन जहां हमारे दांतों और मसूड़ों को स्वच्छ, स्वस्थ तथा सुदृढ़ बनाये रखती है वहीं यह अनेक दंत रोगों से भी हमें बचाती है। हम अपने आसपास के चिरपरिचित वृक्षों तथा पौधों को दातौन के रूप में उपयोग कर सकते हैं -

नीम : प्रतिदिन नीम की दातौन सही ढंग से करने वालों के दांत सदैव निरोगी तथा मजबूत बने रहते हैं। पायरिया समेत सभी प्रकार के संक्रमण तथा दंतरोगों से बचे रहते हैं। दांतों में न तो कीड़े लगते हैं और न ही दंतशूल होता है। मुख के रोगों से बचाव होता है। कहा जाता है कि जो व्यक्ति 12 वर्ष तक नियमित रूप से नीम की दातौन कर लेता हैं उसके मुंह से चंदन के समान सुगंध आने लगती है।

बबूल : बबलू की हरी तथा मुलायम टहनी की दातौन प्रतिदिन करने से दांत मजबूत तथा निरोगी बने रहते हैं।

सरफोंका : सरफोंका या शरपुंरबा (टेफ्रीशिया परट्यूरिया) की जड़ से प्रतिदिन दातौन करने पर दांतों को कोई रोग नहीं होता है।

मौलश्री : मौलश्री की दातौन प्रतिदिन करने से हिलते हुए दांत सुदृढ़ हो जाते हैं। पायरिया रोग धीरेधीरे समाप्त हो जाता है। मसूड़ों से रक्त निकलना बंद हो जाता है। मौलश्री में दंत रोगों को समाप्त करने की अद्‌भुद क्षमता है। आयुर्वेद के ग्रंथों में लिखा है कि 'दन्ता भवन्ति चपलाऽपि च वज्र तुल्या:'। दांत मोती के समान श्वेत और वज्र के समान दृढ़ हो जाते हैं।

बरगद : बरगद की दातौन करने से दांत मजबूत होते हैं। हिलते हुए दांतों को सुदृढ़ करने के लिए यह एक सर्वश्रेष्ठ उपाय है। सड़े हुए दांतों की पीड़ा दूर होती है। बरगद की टहनियों में पाया जाने वाला दूध वेदनास्थापन तथा व्रण रोपण होता हैं। अत: इसकी दातौन करने से दंतशूल तथा मसूड़ों की सड़न में लाभ होता है।

करील : इसकी दातौन दंतशूल में लाभकारी है। इसकी पत्तियों को चबाने से भी दंतशूल में लाभ होता है।

अपामार्ग : इसकी दातौन करने से दंतशूल तथा मसूड़ों से रक्त आने में लाभ होता है। इसकी पत्तियों का स्वरस मसूड़ों पर मलने से दंतशूल में आराम मिलता है।

जामुन : जामुन की दातौन करने से दांतों का दर्द, दांतों का हिलना, मसूड़ों का फूलना तथा रक्त आना आदि रोग ठीक हो जाते हैं, इससे दांत और मसूड़ें भी मजबूत होते हैं।

करज : करंज की दातौन से दांत मजबूत होते हैं।

पीपल : पीपल की दातौन करने से दांत मजबूत होते हैं तथा मलेरिया का ज्वर भी उतर जाता है।

पुत्रंजीवा : इसकी दातौन करने से मसूड़ों से रक्त आना बंद हो जाता है तथा दांतों-मसूड़ों का दर्द भी ठीक हो जाता है।

आम : इसकी टहनी से दातौन करने से दांत स्वच्छ रहते हैं तथा मुख सुवासित हो जाता है।

रतन जोत : रतनजोत की दातौन करने से भी दांतों तथा मसूड़ों को आराम मिलने के साथ ही लाभ होता है।

मेहंदी : इसकी दातौन करने से भी दांतों तथा मसूड़ों को लाभ होता है तथा बाल भी काले हो जाते हैं।

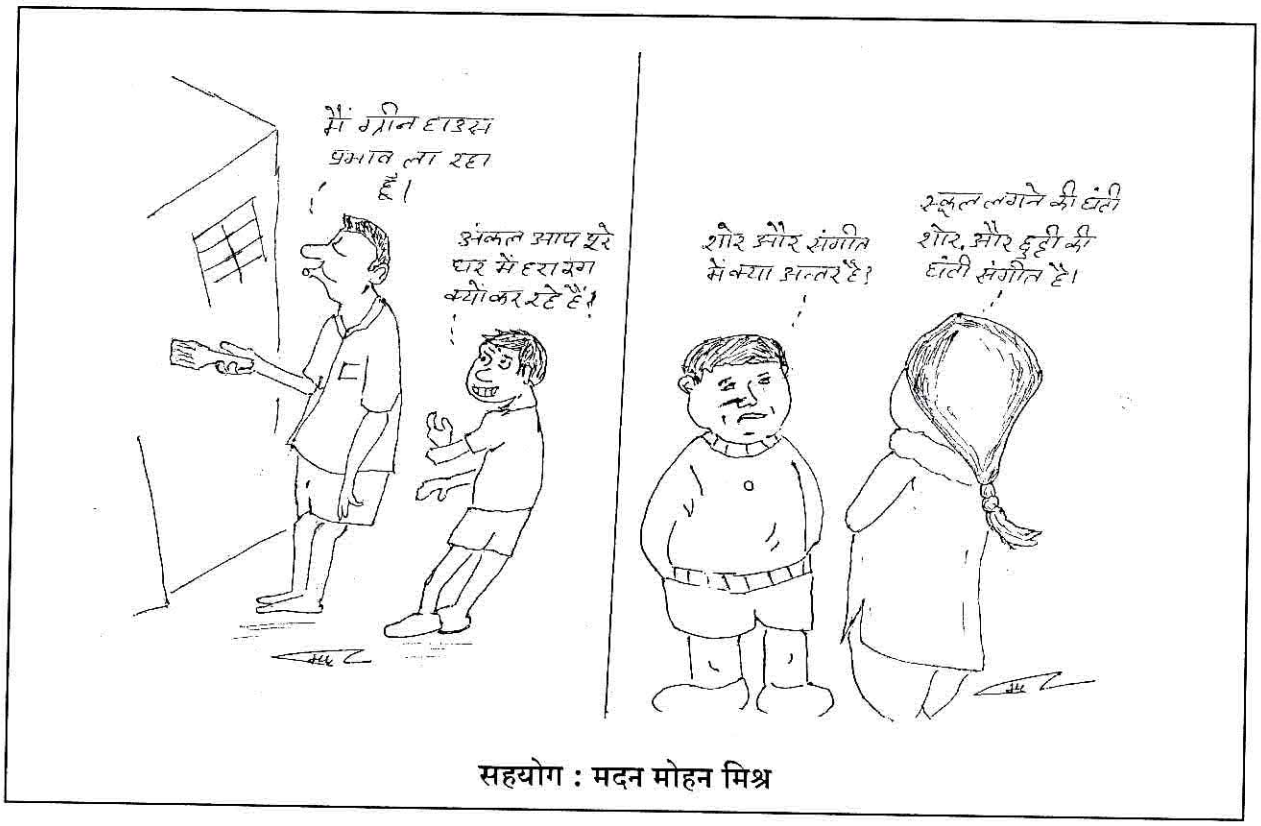

सहयोग : मदन मोहन मिश्र

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2006) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

21वीं सदी का अमृत–स्टीविया

सुभाष चन्द्र

पादप रसायन विभाग, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

कुछ दशक पूर्व चीनी का एक नवीन प्राकृतिक स्रोत वैज्ञानिकों के संज्ञान में आया, जिसे स्टीविया कहा गया। इसकी खोज डॉ. एम. एस. बरटॉनी ने पैरागुवे में सन् 1888 में की थी। यह पैरागुवे मूल का एक झाड़ीनुमा पौधा है। इसके गुणों व औषधीय उपयोगों ने वैज्ञानिकों को आकृष्ट किया है। इसकी पत्तियों में विद्यमान मुख्य रसायनिक तत्त्व स्टीवियोसाइड है। प्रस्तुत लेख में स्टीविया के विभिन्न गुणों, उपयोगों व स्टीवियोसाइड की रसायनिक संरचना की जानकारी दी गयी है। हमारे शरीर के अनेक अंगों को स्वस्थ रखने में स्टीविया के योगदान की भी चर्चा प्रस्तुत लेख में की गयी है।

मीठे खाद्य एवं पेय पदार्थ लगभग सभी को प्रिय होते हैं। इनकी मिठास का कारण है इनमें चीनी या शर्करा का मिला होना। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि इतनी उपयोगी वस्तु की अंतर्राष्ट्रीय खपत की तुलना में इसके उत्पादन के स्रोत अत्यन्त सीमित हैं। साधारणत: चीनी उत्पादन के दो प्रमुख स्रोत हैं। प्रथम प्राकृतिक–जिसके अंतर्गत गन्ना, चुकन्दर आदि आते हैं तथा दूसरा कृत्रिम–इसके अंतर्गत अनेकों कृत्रिम रासायनिक शर्कराएँ जैसे–सेकेरिन, सुक्रालोज, एलीटेम, एसीसल्फेम–के, एस्पार्टेम, कैल्शियम साइक्लामेट तथा अन्य आते हैं। कृत्रिम शर्कराओं की खोज वैज्ञानिकों ने चीनी की खपत अधिक तथा उत्पादन कम होने, चीनी सैकड़ों गुना अधिक मीठी होने एवं चीनी से सस्ती होने के कारण इन्हें चीनी के विस्थापक के रूप में प्रयोग करने के लिए की थी। परन्तु कालान्तर में इसके उपयोग से स्वास्थ्य पर होने वाले कुप्रभावों के कारण इनका उपयोग निरन्तर घटने लगा। आज विश्व के अनेकों पश्चिमी तथा उन्नतिशील देशों ने उपरोक्त कृत्रिम शर्कराओं का प्रयोग पूर्ण रूप से प्रतिबंधित कर दिया है। कुछ दशक पूर्व चीनी का एक नवीन प्राकृतिक स्रोत वैज्ञानिकों के संज्ञान में आया है जिसका नाम है स्टीविया। वैसे यह पौधा शताब्दियों पुराना है परन्तु इसमें विद्यमान गुणों एवं उपयोगों ने वैज्ञानिकों को अत्यधिक आकृष्ट किया है। प्रस्तुत लेख चीनी के इसी प्राकृतिक स्रोत स्टीविया के गुणों, इसमें विद्यमान उपयोगी रासायनिक तत्त्व एवं उनकी संरचना तथा उपयोगों पर आधारित है।

स्टीविया एक छोटा झाड़ीनुमा पौधा है। इसका वानस्पतिक नाम स्टीविया रिबाउडियाना तथा कुल कम्पोजिटी है। इसकी खोज सर्वप्रथम यूरोप के डॉ. एम.एस. बरटोनी ने पैरागुवे में 1888 में की थी । तत्पश्चात् 1905 में उन्होंने इसका वानस्पतिक नामकरण पैरागुवे के प्रसिद्ध रसायनज्ञ डॉ. रिवाउडी के नाम पर किया। यह पैरागुवे मूल का पौधा है तथा इसकी लगभग 150 अन्य प्रजातियाँ है परन्तु मिठास एवं अन्य गुणों के कारण यही प्रजाति मुख्य है। वहां के स्थानीय लोग इसकी पत्तियों का उपयोग सैकड़ों वर्ष पूर्व से चाय आदि को मीठी करने के लिए करते आये हैं। इसके पश्चात् धीरे–धीरे यह पौधा कई देशों में उगाया जाने लगा। जब लोगों को इसमें विद्यमान कैलोरी रहित शर्करा के बारे में ज्ञान हुआ तब इसका प्रचार–प्रसार एवं छुटपुट खेती प्रारंभ हुई। इससे निर्मित खाद्य/पेय पदार्थ सर्वप्रथम जापान में प्रारंभ हुए। स्टीविया से निष्कर्षित मीठे रसायन (शर्करा) के मुख्य उत्पादक एवं उपभोक्ता जापान एवं चीन है। केवल जापान में प्रतिवर्ष लगभग 2 हजार टन मीठे उत्पाद इससे तैयार किये जाते हैं जो कि कुल उत्पादों (जिसमें कृत्रिम मीठे रसायन से निर्मित पदार्थ भी शामिल है) का 40 प्रतिशत है।

वर्तमान समय में जापान में कृत्रिम रासायनिक शर्करा का उपयोग पूर्णतया प्रतिबंधित है इसलिए यहां के लोग सूखे पाउडर तथा कण रूप में इसका उपयोग खाद्य/पेय पदार्थो में करते हैं। पैरागुवे के साथ साथ ब्राजील भी अब स्टीविया के उत्पादों एवं इसके व्यवसाय का अंतर्राष्ट्रीय केंद्र बन कर उभर रहा है। इसी कारण यहां आज 300 एकड़ से भी अधिक भूमि पर इसकी खेती की जा रही है। इसके अतिरिक्त चीन, कोरिया, ताइवान, थाईलैंड तथा अनेक अन्य देशों ने भी इसकी खेती प्रारंभ कर दी है।

रासायनिक अपघटक एवं संरचना :

स्टीविया की पत्तियों में विद्यमान मुख्य रासायनिक तत्त्व स्टीवियोसाइड है। इसके अंतर्गत अनेकों ग्लाइकोसाइड्स

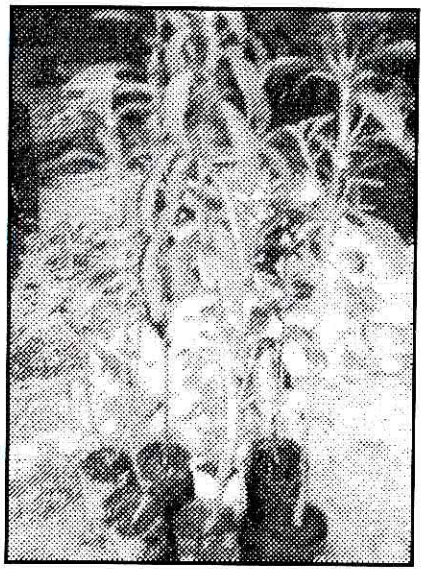

(स्टीविया पौधा)

आते हैं। 1900 में सर्वप्रथम इसके रासायनिक तत्त्वों को पृथक किया गया था। इसमें निहित प्राकृतिक, कैलोरी रहित शर्करा ने ही रसायनज्ञों एवं जैवरसायनज्ञों का ध्यान आकर्षित किया। 1908 में $C_{42}H_{72}O_2$ रसायन को इसका अपघटक माना गया। तत्पश्चात् 1930 में स्टीवियोल को पहचाना गया। 1950-60 के दशक में इसके मुख्य मीठे डाईटर्पिनोयड ग्लाइकोसाइड्स (स्टीवियोल ग्लाइकोसाइड्स $C_{38}H_{60}O_{10}$) की संरचना स्थापित की गयी। बाद में इन यौगिकों पर अत्यधिक अनुसंधान कार्य किया गया (ब्रेन्डिल आदि, 1998)। स्टीविया की सूखी पत्तियों में दो प्रमुख यौगिक पाये जाते हैं- स्टीवियोसाइड (5-10%) तथा रिबाउडियोसाइड (2-4%)। उपरोक्त यौगिकों में रिबाउडियोसाइड-सी (1-2%) तथा डुल्कोसाइड 'ए' एवं 'सी' के अतिरिक्त अल्प मात्रा में अन्य ग्लाइकोसाइड्स जैसे-फ्लेवोनोयड ग्लाइकोसाइड्स कोमेरिन्स, सिनेमिक अम्ल, फिनाइल प्रोपेनोयड्स तथा वाष्पित तेल भी पाये जाते हैं। उपरोक्त ग्लाइकोसाइड्स सामान्यत: 200 डिग्री सेग्री ताप एवं अम्ल में भी स्थायी रहते हैं। स्टीवियोसाइड की मात्रा (सभी ग्लाइकोसाइड्स को मिलाकर) कुल का लगभग 60-70 प्रतिशत होता है। ये चीनी से लगभग 110-270 गुना अधिक मीठे होते हैं। रिबाउडियोसाइड्स की कुल मात्रा 30-40 प्रतिशत है और यह चीनी से 180-400 गुना अधिक मीठा होता है। मिठास की गुणवत्ता उपरोक्त दोनों यौगिकों के अनुपात पर निर्भर करती है। रिबाउडियोसाइड्स का अधिक अनुपात मिठास को कडुवाहट में बदल देता है। दोनों यौगिकों की समान मात्रा ही सही अनुपात है। स्टीवियोसाइड की रासायनिक संरचना निम्न है -

स्टीविया के मुख्य अपघटकों की संरचना एवं गुणों का विस्तृत अध्ययन किया जा चुका है। (C-NMR) न्यूक्लीय चुबकीय रेजोनेन्स उपकरण की सहायता से ग्लाइकोसाइड्स की संरचना ज्ञात की गयी। इसकी पत्तियों में निहित रसायनों की पहचान एवं अध्ययन थिन लेयर क्रोमैटोग्राफी (TLC), ड्रापलेट काउंटर करंट कोमैटोग्राफी एवं एच.पी.एल.सी. (HPLC) द्वारा की गयी। इस उपकरण द्वारा स्टीविया के पौधे एवं खाद्य पदार्थों में न्यूनतम सांद्रता 10mμg/ml (10 पी.पी.एम.) तथा न्यूनतम मात्रा 0.610 mμg/ प्राप्त हुई। यह अनेकों ग्लाइकोसाइड्स को पृथक करने एवं उनकी मात्रा की गणना करने का अच्छा उपकरण है। इसके लिए एक श्रेणी के विभिन्न शोषकों जैसे-सिलिका जैल तथा एमीनोबंध कॉलम का प्रयोग किया जाता है। स्टीविया की सूखी पत्तियों में स्टीवियोसाइड की प्रतिशत मात्रा ज्ञात करने के लिए क्रोमेटोग्राफी, चुबकीय रेजोनेंस स्पेक्ट्रोमीटरी, स्पेक्ट्रोस्कोपी तथा एंजाइमेटिक गणना आदि विधियों का प्रयोग किया जाता है।

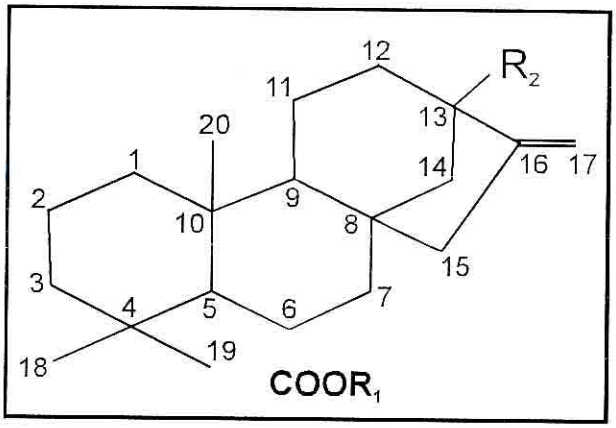

गुण :

स्टीविया एक ऊर्जारहित एवं ताजगीयुक्त प्राकृतिक शर्करा है। यह शरीर में क्षारीयपन को कम करती तथा खट्टेपन/कडुवाहट की मात्रा को सही कर देती है। यह अधिक ताप (200 डिग्री.सेग्रे.) पर भी अपघटित एवं भूरी नहीं होती है। दाँतों में सड़न रोकने के साथ अम्ल एवं क्षार में भी स्थायी/स्थिर रहती है। यह किण्वित नहीं होती है। इसमें खाद्य/पेय पदार्थों को स्वादिष्ट बनाने का अद्भुत गुण है। उपरोक्त गुणों के कारण यह स्वास्थ्य के लिए अत्यंत उपयोगी एवं सुरक्षित है।

उपयोग :

स्टीविया के पौधे से निष्कर्षित स्टीवियोसाइड का उपयोग अनेकों देशों जैसे-पैरागुवे में 500 वर्ष पूर्व, जापान में 25 वर्ष पूर्व से प्रचुर मात्रा में हो रहा है । इसका प्रमुख कारण है कि उपरोक्त देशों में खाद्य/पेय पदार्थों तथा औषधि निर्माण में इसके उपयोग की पूर्ण स्वीकृति है । अत्यधिक ताप पर स्थायी, अम्ल एवं क्षार के साथ प्रतिक्रिया न करने के कारण इसके उपयोग का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत हो गया है। आजकल खाद्य पदार्थ, कन्फैक्शनरी, जैम, जैली, बेकिंग, आइस क्रीम, चुइंगम, चाकलेट, तबाकू उत्पादन तथा भोजन में चीनी के स्थान पर इसका उपयोग प्रचुर मात्रा में हो रहा है। यह खाद्य पदार्थों को आकर्षक एवं सुगंधित बना देता है। प्राकृतिक एवं ऊर्जारहित शर्करा होने के कारण यह शरीर एवं स्वास्थ्य के लिए उत्तम है।

औषधीय उपयोग :

स्टीविया से प्राप्त स्टीवियोसाइड का उपयोग टूथपेस्ट, माउथवॉश, शारीरिक भार कम करने, त्वचा की रक्षा करने, जल्दी घाव भरने, डायबिटीज रोगियों के लिए, उच्च/कम रक्तदाब तथा कैंसर आदि रोगों के औषधि निर्माण में किया जा रहा है। डायबिटीज के रोगी तो इसे आदर्श शर्करा मानते हैं, क्योंकि यह शरीर की कोशिकाओं की क्रियाशीलता तथा शरीर के रक्त में शर्करा के अनुपात को सही रखता है । हमारे शरीर के अनेक अंगों को स्वस्थ रखने में इसका योगदान निम्नलिखित है :

1) रक्त शर्करा की सामान्य बनाये रखना – पैरागुवे के उपयोगकर्ताओं के अनुसार स्टीविया मधुमेह एवं हाइपोग्लाइसीमिया रोगों के लिए अत्यंत लाभप्रद है क्योंकि यह पैन्क्रियाओं को सुपोषित कर उनकी क्रियाशीलता को सामान्य बनाये रखता है। अनेक वैज्ञानिक परीक्षणों ने उपरोक्त तथ्य की पुष्टि की है। इसका निष्कर्षण 6-8 घंटों में शरीर रक्त शर्करा की मात्रा 35.2 प्रतिशत कम कर देता है। यही कारण है कि पैरागुवे में चिकित्सक मधुमेह रोगियों को स्टीविया की चाय तथा इससे निर्मित कैप्सूलों का उपयोग कराते हैं। यहाँ एक बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि स्टीविया मनुष्य की सामान्य रक्त शर्करा के स्तर को कम नहीं करती है बल्कि प्रो. डैविड जे. मिडमोर के अनुसार यह उच्च रक्त शर्करा को कम तथा कम रक्त शर्करा के स्तर को सामान्य करने में सहायक है। साथ ही यह हमारे स्वास्थ्य के लिए पूर्ण सुरक्षित भी है।

2) हृदय संवहनी क्रिया – (Cardiovascular) स्टीविया तथा स्टीवियोसाइड का मनुष्यों एवं पशुओं की हृदय संवहनी क्रियाओं पर विस्तृत अध्ययन एवं अनुसंधान किये जा चुके हैं। परिणामों से यह ज्ञात हुआ है कि इसकी सामान्य मात्रा का उपयोग हृदय/संपूर्ण शरीर के लिए लाभप्रद है। इसका हमारे शरीर के किसी अंग पर कोई दुष्प्रभाव नहीं है। यह हमारे संवहनी तंत्र तथा हृदय को शक्ति प्रदान करता है।

3) सूक्ष्म जैविक क्रिया – स्टीविया के उपयोग से शरीर के लिए हानिकारक जीवों की वृद्धि समाप्त हो जाती है। इसलिए इसके उपयोग करने वाले लोगों को सूक्ष्म जैविक कारणों से उत्पन्न रोग जैसे-सर्दी, जुकाम, फ्लू आदि कम होते हैं । वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार इसका उपयोग विभिन्न सूक्ष्म जीवाणु जैसे स्ट्रेप्टोकोकस क्यूटेंस, स्यूडोमोनास एरुगिनस, प्रोटियुस बल्गेरिस आदि की वृद्धि को रोकता है।

4) पाचन क्रिया में सुदृढ़ता – ब्राजील में इसकी पत्तियों का उपयोग शताब्दियों से औषधियों की कडुवाहट/अप्रिय स्वाद समाप्त करने के लिए किया जा रहा है। प्रेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि यह हमारे पाचन तंत्र को सुदृढ़ करने में पूर्ण सहायक है तथा गैस्ट्रोइन्टेसटाइन की क्रिया को भी ठीक करता है। चीन में इससे निर्मित चाय का उपयोग कम कैलोरी, मिठास, पाचन क्रिया में सहायक, शरीर के भार को संतुलित रखने, यौवन स्थायित्व तथा उद्दीपन आदि के लिए किया जाता है।

5) त्वचा पर प्रभाव – पैरागुवे के मूल आदिवासी (गुवारानी) की रिपोर्ट के अनुसार स्टीविया का निष्कर्षण त्वचा के समस्त रोगों जैसे दाद-खुजली तथा अन्य पर अत्यंत प्रभावशाली है। इसका उपयोग कटने तथा घाव भरने में भी लाभप्रद है। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि यह घावों के दर्द के साथ उनके निशान को भी समाप्त करता है। इसमें त्वचा को मुलायम करने का गुण भी विद्यमान है। इन्हीं गुणों को ध्यान में रखते हुए एफ.डी.ए.ने अमरीका के व्यवसायियों को स्टीविया के पैकेटों पर ''स्टीविया चीनी ही नहीं और भी बहुत कुछ है'' का लेबल लगाने का निर्देश दिया है।

अन्य उपयोग :

1. नमकयुक्त खाद्य पदार्थ जैसे-अचार, चटनी, सोया सॉस, मछली के मांस तथा अनेकों डिब्बा बंद प्रसंस्कृत उत्पादों में।
2. हल्के भोजन तथा दुग्धयुक्त खाद्य/पेय पदार्थों में।
3. आइसक्रीम, दही, जैली, बर्फयुक्त पदार्थ तथा सैकड़ों अन्य मीठे खाद्य पदार्थों तथा कन्फैक्शनरी उत्पादों में।
4. बोतल बंद पेय पदार्थों एवं फलों के रस में।
5. सैकड़ों औषधियों के उत्पादन में।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2006) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त (अहिंदी वर्ग)

आयुर्विज्ञान में विकिरण प्रतिरक्षा आमापन तथा प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन के क्रांतिकारी विकास एवं उपयोग

डॉ. यशवंत नाईक

उत्पाद विकास अनुभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई – 400 085.

विकिरण प्रतिरक्षा आमापन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा मनुष्य के शरीर में उपस्थित लगभग सभी जैव रसायनों व अन्य विषाणुओं की अत्यधिक सूक्ष्म मात्रा का मापन किया जा सकता है । इसकी खोज एक महिला वैज्ञानिक रोजालिन यलो ने की थी । प्रस्तुत लेख में इस तकनीक का मूल सिद्धांत, क्रिया-विधि व प्रयोग-विधि का विस्तार से वर्णन किया गया है । किसी भी जैविक शरीर में कोशिकाओं का बनना व टूटना निरंतर चलता रहता है । शरीर में यदि प्रतिजन अणुओं की संख्या प्रतिरक्षी अणुओं की तुलना में अधिक हो जाती है तो जीव बीमार पड़ जाता है । प्रतिजन तथा प्रतिरक्षी अणुओं के बीच होने वाली विशिष्ट क्रिया में रेडियोधर्मिता के सफल प्रयोग से क्लिनिकल निवारण में एक क्रांति आयी है । विकिरण प्रतिरक्षा आमापन आज एक अत्यंत लोकप्रिय व विकसित विज्ञान है । प्रतिजन तथा उसके प्रतिरक्षी के बीच एक विशिष्ट जैव रसायनिक क्रिया होती है । अत: इस विधि द्वारा रोग-निवारण में गलती की आशंका नगण्य है । इसमें प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन के विभिन्न प्रकारों का विस्तार से वर्णन किया गया है । साथ ही इसके गणितीय आधार पर भी विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

सदियों पहले मानव के लिए यह ब्रह्मांड एक अद्‌भुत कौतुहल का विषय था । उसे यह जानने की सदैव उत्सुकता रहती थी कि ब्रह्मांड की विभिन्न वस्तुएं जैसे आसमान में टिमटिमाते तारे, सोने के समान चमकता सूर्य तथा रजत के समान उज्वल चंद्रमा आखिर किस चीज के बने हैं। कहते हैं आवश्यकता आविष्कार की जननी है अत: अपनी इस जिज्ञासा को पूर्ण करने के लिए उसने कई उपकरण जैसे टेलीस्कोप, स्पेक्ट्रोस्कोप स्पेक्ट्रोमीटर इत्यादि खोज निकाले, जिनके उपयोग से आसमान के तारों, सूर्य तथा चंद्रमा को जानने के लिए महत्त्वपूर्ण जानकारी मिल सकी । मनुष्य का शरीर भी ऐसा ही उत्सुकता का विषय रहा है तथा यह किस पदार्थ का बना है ? इस तरह के प्रश्न उसके मन में उठने लगे । समय के साथ हो रहे शरीर के परिवर्तनों ने भी मन में कई प्रश्न खड़े किये जिनका उचित हल निकालने के लिए उसके द्वारा प्रयत्न करना स्वाभाविक ही था । अपने ही शरीर में हो शारीरिक क्रियाओं तथा रोगों का अध्ययन करने की जिज्ञासावश कई उपकरण बनने लगे । आज ऐसे गई उपकरण बाजार में उपलब्ध हैं जिनके उपयोग से शरीर की आंतरिक संरचना का ज्ञान संभव है, जैसे क्ष-किरण उपकरण, टोमोग्राफी उपकरण इत्यादि । बेक्वेरल, मैरी तथा जुलियट क्यूरी द्वारा प्राकृतिक तथा कृत्रिम रेडियोधर्मिता की खोज के बाद से विकिरण तथा विकिरणोत्सर्गी समस्थानिकों के बारे में अनुसंधान होने लगे। हेक्स ने सर्वप्रथम विकिरणोत्सर्गी समस्थानिकों का उपयोग रासायनिक क्रियाओं के अध्ययन में किया । उसके बाद तो मानों विकिरणोत्सर्गी समस्थानिकों के विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे जैव रसायन विज्ञान तथा औषध विज्ञान में उपयोगिता दिखने लगी व अनुसंधान कार्य होने लगे ।

किसी भी जीव के शरीर में अपापचय क्रियाएं होती रहती हैं जिनके सुचारू चलने से शरीर तंदुरुस्त रहता है । कोशिकाओं का बनना व टूटना निरंतर चलता रहता है । शरीर में विषाणुओं जिन्हैं हम प्रतिजन कहते हैं, की घुसपैठ से बचने के लिए विशिष्ट प्रकार के जैव रसायन अपने आप बनने लगते हैं जिन्हें प्रतिरक्षी कहा जाता है । परंतु जब इन प्रतिजन अणुओं की संख्या अधिक हो जाती है, तो उनके

दुष्प्रभाव से बचने के लिए निर्मित प्रतिरक्षियों की संख्या कम पड़ती है जिसके कारण जीव बीमार हो जाता है । ऐसे में अगर हम जीवाणुओं का पता जल्दी लगा सकें तो मनुष्य को बीमारी की अनावश्यक पीड़ा से बचाया जा सकता है । यह तभी संभव है जब हमारे पास एक ऐसी तकनीक हो जो कि प्रत्येक विषाणु के लिए विशिष्ट हो तथा साथ ही सुग्राही भी हो। विकिरण प्रतिरक्षा आमापन एक ऐसी ही विधि है जिसके उपयोग से मनुष्य के शरीर में उपस्थित लगभग सभी जैव रसायनों तथा अन्य विषाणुओं की अत्यधिक सूक्ष्म मात्रा (लगभग 0.1 पिको ग्राम प्रति मिली लिटर तक) मापना या आकलित करना संभव है।

विकिरण प्रतिरक्षा आमापन की खोज एक महिला वैज्ञानिक रोजालिन यलो ने की थी । वे मधुमेह के रोग तथा उसकी उपचार विधि पर कार्य कर रहीं थीं तथा जानना चाहती थीं कि मेच्योरिटी आनसेट मधुमेह होने का कारण इन्सुलिन घटने के कारण नहीं होता है अपितु यह इन्सुलिन के तीव्रगति से अवकर्षण के कारण होता है। उन्होंने यह जानने के लिए इन्सुलिन को विकिरणोत्सर्गी समस्थानिक ^{131}I द्वारा टंकित कर उसका उपयोग स्वस्थ मनुष्य तथा मधुमेह से ग्रसित व्यक्तियों के शरीर में इन्सुलिन की अपापचय क्रिया का अध्ययन किया । इस अध्ययन के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंची कि विकिरणोत्सर्गी समस्थानिक ^{131}I द्वारा टंकित इन्सुलिन के अणु मधुमेह से ग्रसित मरीजों के शरीर में प्लाज्मा से निष्कासन के लिए उन व्यक्तियों के शरीर से जिन्हें कभी इन्सुलिन न दिया गया हो की तुलना में अधिक समय लेते हैं । विकिरणोत्सर्गी समस्थानिक ^{131}I द्वारा टंकित इन्सुलिन के रिसाव में यह देरी टंकित इन्सुलिन के उसके विशिष्ट प्रतिरक्षी जो कि इन्सुलिन देने के बाद शरीर में बनने लगते हैं, के साथ जुड कर प्रतिजन-प्रतिरक्षी संकर बनाने के कारण होती है । इन प्रतिरक्षी अणुओं की मात्रा अत्यधिक सूक्ष्म होने के कारण उस समय प्रयुक्त होने वाली विधियों द्वारा इसका मापन संभव नहीं था परंतु रेडियोधर्मिता का मापन अत्यधिक सुग्राही होने से विकिरणोत्सर्गी ^{131}I द्वारा टंकित इन्सुलिन के उपयोग से यह संभव हो सका । उनके प्रयोगों से यह भी पता लगा कि इन्सुलिन का उसके प्रतिरक्षी के साथ संकर एक निश्चित अनुपात में बनता है । इस जैव रसायनिक प्रतिक्रिया को टेस्ट ट्यूब में भी करा सकते हैं तथा जुड़े तथा स्वतंत्र रेडियोधर्मिता इन्सुलिन को अलग कर इनका मापन किया जा सकता है। इस तरह के मापन विधि को इन विट्रो विकिरण प्रतिरक्षा आमापन कहते हैं । उनके आयुर्विज्ञान तथा शरीर क्रियात्मक विज्ञान के क्षेत्र में इस उत्कृष्ट कार्य के लिए 1977 में उन्हें नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

विकिरण प्रतिरक्षा आमापन का सिद्धांत व क्रिया-विधि

यह देखा गया है कि उच्च सजातीयता तथा उच्च अनुमापिता वाले प्रति हारमोन प्रतिरक्षी टंकित हारमोन से उत्क्रमणीय रूप से जड़ते हैं तथा इस क्रिया में अटंकित हारमोन से प्रतिस्पर्धा के कारण रुकावट पैदा करते हैं जैसा कि चित्र-1अ में दिखा गया है। विकिरण प्रतिरक्षा आमापन का मूल सिद्धांत इसी विशिष्ट क्रिया पर निर्भर करता

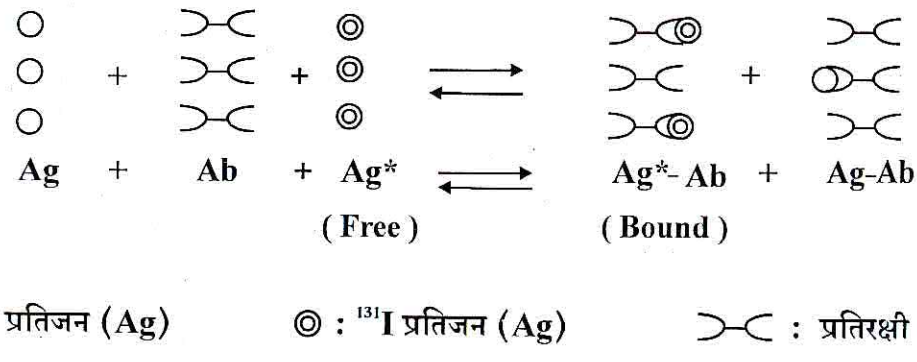

चित्र – 1 अ : विकिरण प्रतिरक्षा आमापन का सिद्धांत

है। इस विधि का सिद्धांत एक दम सरल है। इस विधि में प्रतिजन की मात्रा का आकलन, प्रतिजन की अज्ञात मात्रा में विकिरणोत्सर्गी समस्थानिक द्वारा टंकित प्रतिजन की निश्चित मात्रा मिलाकर दोनों की क्रिया उनके विशिष्ट प्रतिरक्षी से करायी जाती है। प्रतिजन तथा प्रतिरक्षी जैव रसायनों के बीच की प्रतिक्रिया अति विशिष्ट होती है जिसके कारण प्रतिजन-प्रतिरक्षी (Ag*-Ab) संकर बनता है। क्रिया की संतुलन अवस्था आ जाने के बाद (Ag*-Ab) तथा स्वतंत्र प्रतिजन को अलग किया जाता है। तथा उनमें विद्यमान रेडियोधर्मिता को मापा जाता है। साथ ही प्रतिजन के विभिन्न ज्ञात सांद्रता के घोल बनाकर उसमें टंकित प्रतिजन की निश्चित मात्रा मिला कर विशिष्ट प्रतिरक्षी के साथ प्रतिक्रिया करायी जाती है तथा (Ag*-Ab) प्रतिक्रिया की संतुलन अवस्था आने के बाद (Ag*-Ab) में विद्यमान रेडियोधर्मिता Y अक्ष पर तथा स्वतंत्र Ag* में विद्यमान रेडियोधर्मिता X अक्ष पर लेकर अंशशोधन वक्र ग्राफ पेपर पर तैयार किया जाता है जैसा कि चित्र-1ब में दिया गया है। इस अंशशोधन वक्र के उपयोग से प्रतिजन की सूक्ष्म मात्रा का आकलन किया जाता है। हर प्रतिजन के लिए यह अंशशोधन वक्र अलग से बनाना होता है।

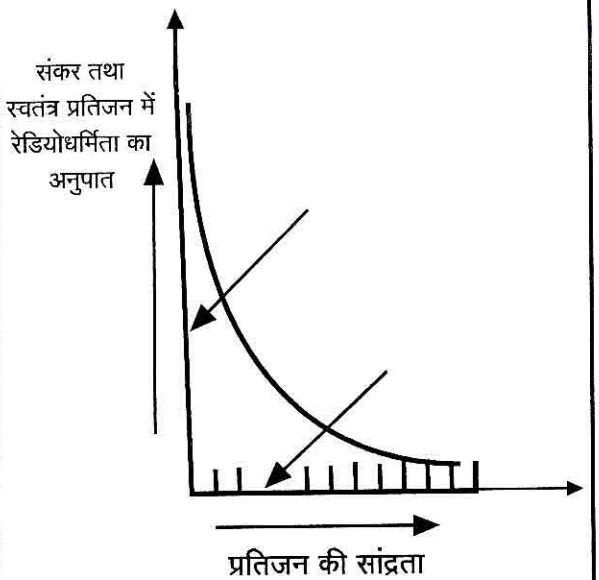

चित्र – 1 ब :
विकिरण प्रतिरक्षा आमापन अंशशोधन वक्र

प्रतिजन तथा प्रतिरक्षी अणुओं के बीच होने वाली इस विशिष्ट रासायनिक प्रतिक्रिया में रेडियोधर्मिता के सफल प्रयोग ने क्लिनिकल निवारण में क्रांति की ज्वाला फूंक दी। नित नयी विधियां खोजी जाने लगी तथा विभिन्न रोगों के विषाणुओं का पता अत्यंत सूक्ष्म अवस्था में होने से रोगों का निवारण जल्दी होने लगा तथा विभिन्न रोगों से लोगों की जान बचाना संभव हो गया। आज लगभग सभी हारमोनल, नॉनहारमोनल तथा अन्य कई जैव रसायनों की मात्रा का पता विकिरण प्रतिरक्षा आमापन से किया जाता हैं। आज ये कई अन्य जैव रसायनों की मात्रा का पता लगाने के लिए भी किये जाते है। यह या तो विशिष्ट रूप से प्रतिक्रिया करने वाले प्लाज्मा में उपस्थित प्रोटीन हो सकता है, या विशिष्ट एन्जाईम हो सकता है या तंतु-ग्राही स्थान हो सकता है। विकिरण प्रतिरक्षा आमापन आज एक अत्यंत विकसित विज्ञान है तथा इसकी उपयोगिता का अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि आज यह विधि विभिन्न क्लिनिकल निवारणों में प्रयुक्त है जिनमें से विशेष जानकारी तालिका-1 में दी गयी है।

इसकी लोकप्रियता के प्रमुख कारण निम्न हैं :

1) विशिष्टता : प्रतिजन तथा उसके प्रतिरक्षी के बीच एक विशिष्ट जैव रासायनिक प्रतिक्रिया होती है अतः इस विधि द्वारा रोग निवारण में गलती होने की आशंका नगण्य होती है।
2) रेडियोधर्मिता का मापन अत्यंत सुग्राही होता है। अतः इस तकनीक से रोग का निवारण उसकी प्रारंभिक अवस्था में ही हो जाता है जो कि अन्य विधियों द्वारा सामान्यतः संभव नहीं होता है।

जैव रसायनों की अत्यंत सूक्ष्म मात्रा इस विधि द्वारा मापी जा सकती है । प्रतिजन तथा उसके प्रतिरक्षी के बीच एक विशिष्ट जैव रसायनिक प्रतिक्रिया होने के कारण ही प्लाज्मा में होने वाले पेप्टाइड हारमोनो की सूक्ष्म मात्रा का मापन इस विधि द्वारा प्लाज्मा प्रोटीन की अरब गुना अधिक मात्रा होने के बावजूद संभव हो गया है।

प्रतिजन तथा उसके प्रतिरक्षी के बीच एक विशिष्ट जैव रासायनिक प्रतिक्रिया तथा अत्यंत सुग्राही रेडियोधर्मिता मापन के संयोग से पेथोजैनिक निवारण काफी सरल व सही होने लगे हैं। इस विधि के कारण ही शरीर में हारमोन की

तालिका–1 : कुछ जैव रसायनिक पदार्थ जिनका मापन आज विकिरण प्रतिरक्षा आमापन द्वारा किया जाता है

पेप्टाइड हारमोन	नॉन पेप्टाइड हारमोन	नॉन हारमोन पदार्थ
पिट्युरिटी हारमोन	थाइराइड हारमोन	ड्रग तथा विटामिन
ग्लायकोप्रोटीन	स्टेराइड हारमोन	साइक्लिक न्यूक्लियोटाइडस
कोरियोनिक हारमोन	प्रोस्टाग्लेन्डिन्स	एन्जाइम्स
पेनक्रियाटिक हारमोन	बायोलॉजिकान्सि	वायरस
केलसीटोपिक हारमोन		ट्यूमर प्रतिजन
गेस्टोइन्टेस्टिनल हारमोन		सेरम प्रोटीन
वेसोएक्टिव हारमोन		कई अन्य पदार्थ
स्त्रावित तथा स्त्राव रोकने वाले हारमोन		
कई अन्य पेप्टाइड		

मात्रा का संतुलन बिगड़ने के कारण होने वाले विकारों के बारे में उपयोगी जानकारी मिली है।

विकिरण प्रतिरक्षा आमापन की खोज होने के बाद से ही इस विधि को और सुदृढ़ बनाने तथा इसका साहित्य सृजन होने लगा। नित नयी विधियां विकसित की गयी । ये मुख्यत: टंकित तथा अटंकित प्रतिजनों के विशिष्ट प्रतिरक्षी के साथ होने वाली विशिष्ट प्रतिक्रिया पर ही आधारित थी। जैसा कि हम जानते हैं पहले इसका उपयोग इन्सुलिन तथा वृद्धि हारमोन की मात्रा जानने के लिए किया जाता था। आज इसका उपयोग थायरॉइड हारमोन तथा कई नॉन हारमोन पदार्थों के मापन के लिए भी किया जाता है।

विकिरण प्रतिरक्षा आमापन में टंकित प्रतिजन का उपयोग किया जाता है, परंतु टंकित प्रतिरक्षी का उपयोग भी संभव होना चाहिए। इसी आधार पर एक अन्य विधि विकसित की गयी जिसमें टंकित प्रतिरक्षी का उपयोग किया जाता है। इस विधि को प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन कहते हैं। इस विधि में टंकित प्रतिरक्षी का अत्यंत शुद्ध होना आवश्यक है। इस कार्य के लिए प्रतिरक्षा अधिशोषकों का उपयोग किया जाता है। प्रतिजन के साथ प्रतिक्रिया के लिए इसे इनक्युबेशन के लिए रखा जाता है। प्रतिजन–प्रतिरक्षी अणुओं के बीच बने संकर तथा स्वतंत्र प्रतिजन में विकिरण की मात्रा को नापा जाता है। आज ऐसी कई विधियां हो चुकी हैं जिसके उपयोग से प्रतिजन का सांद्रण का आमापन अत्यंत सूक्ष्म अवस्था में किया जा सकता है जिसके कारण यह तकनीक और भी सुग्राही हो गयी है। विकिरण प्रतिरक्षा आमापन में अत्यधिक सक्रियता वाले प्रतिरक्षी का उपयोग होता है अत: इसकी बहुत ही कम मात्रा लगती है, रोगी का खर्च कम होता है। वहीं यह मात्रा प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन में यह कई गुना अधिक होती है अत: उसमें लागत भी अधिक होती है। साथ ही अधिक मात्रा में प्रतिरक्षी बनाना आसान कार्य नहीं है। इन दोनों प्रकार के मापन में टंकन के लिए विकिरणोत्सर्गी ^{131}I का उपयोग बहुतायत से होता है। विकिरण प्रतिरक्षा आमापन तथा प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन का तुलनात्मक अध्ययन तालिका–2 में किया गया है।

विकिरण प्रतिरक्षा आमापन की प्रयोग विधि –

इस विधि के निम्न चरण हैं :–

1) पहले प्रतिजन को विकिरणोत्सर्गी समस्थानिक से टंकित किया जाता है व उसका घोल तैयार किया जाता है। इस कार्य के लिए आयोडीन के समस्थानिक ^{131}I का उपयोग होता है, क्योंकि आयोडीन, प्रोटीन के टायरोसिन

तालिका–2 : विकिरण प्रतिरक्षा आमापन तथा प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन का तुलनात्मक अध्ययन –

तुलनात्मक विशेषता	प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन	विकिरण प्रतिरक्षा आमापन
टंकित रसायन	प्रतिरक्षी	प्रतिजन
सिद्धांत	प्रतिजन को दो प्रतिरक्षी अणुओं के बीच अंतर्निविष्ट करना	प्रतिरक्षी तथा प्रतिजन के बीच प्रतिस्पर्धात्मक टकराव की इम्यून जैव रसायनिक प्रतिक्रिया
प्रतिरक्षी	अ) शुद्ध प्रतिरक्षी का उपयोग ब) दो प्रतिरक्षी लगते हैं स) मोनोक्लोनल तथा पॉली क्लोनल दोनों का सफल प्रयोग हुआ है द) शुद्ध प्रतिरक्षी की ज्यादा मात्रा लगती है	अ) प्रतिरक्षी की अति शुद्धता आवश्यक नहीं ब) एक की पॉली क्लोनल एन्टीसेरम का उपयोग किया जाता है स) पॉली क्लोनल प्रति सेरम का उपयोग आवश्यक है द) प्रतिरक्षी की कम मात्रा लगती है
प्रतिजन की शुद्धता	सामान्य प्रतिजन का उपयोग हो सकता है	प्रतिजन की शुद्धता आवश्यक
प्रतिजन का आकार	अधिक अणुभार वाले अणुओं के लिए सफलता से किया जा सकता है	कम तथा अधिक अणुभार वाले दोनों प्रकार के अणुओं के लिए सफलता से किया जा सकता है
अलग करने की विधि	ठोस कला का उपयोग किया जाता है	द्रव कला का उपयोग किया जाता, परंतु ठोस कला का उपयोग भी संभव है
मानक चित्र	लंबी परिसर की सांद्रता में रेखीय	केवल सीमित सांद्रता में रेखीय

अवशेष पर जल्दी व आसानी से टंकित हो जाती है।

2) प्रतिजन के लिए उसके विशिष्ट प्रतिरक्षी का उत्पादन किया जाता है ताकि उसकी प्रतिजन के साथ क्रिया द्वारा प्रतिजन–प्रतिरक्षी संकर (Ag*-Ab) बनाया जा सके।
3) ज्ञात सांद्रता वाले अटंकित प्रतिजन का घोल तैयार किया जाता है तथा इस घोल की निश्चित मात्रा टंकित प्रतिजन के भिन्न सांद्रता वाले घोल जो कि टेस्ट ट्यूब में होते हैं, में डालते हैं।
4) अटंकित एन्टिजन की मात्रा बढ़ने से वह प्रतिजन–प्रतिरक्षी (Ag*-Ab) से रेडियो टंकित प्रतिजन की जगह लेने लगती है तथा कुछ समय बाद टंकित प्रतिजन तथा उसकी संकर में होने वाली मात्रा के बीच एक रासायनिक संतुलन बन जाता है। इस संतुलन की अवस्था में जुड़े तथा स्वतंत्र टंकित प्रतिजन में रेडियोधर्मिता की मात्रा के बीच एक निश्चित अनुपात होता है तथा यह प्रतिजन की सांद्रता के साथ एक रेखीय अनुपात में घटती अथवा बढ़ती है।
5) साम्यावस्था आने पर प्रतिजन–प्रतिरक्षी संकर (Ag*-Ab) तथा स्वतंत्र प्रतिजन में रेडियोधर्मिता की मात्रा को विकिरणमापी उपकरण से मापते हैं।
6) प्राप्त आंकडों का उपयोग कर एक मानक चित्र तैयार किया जाता है जिसे चित्र–1ब में दिखाया गया है।
7) प्राप्त अज्ञात सांद्रता वाले प्रतिजन के घोल में भी टंकित प्रतिजन डाल कर इसी प्रकार रेडियोधर्मिता मापी जाती है।

उपरोक्त रेखाचित्र के उपयोग से उसकी सांद्रता पता कर लेते हैं।

प्रतिजन तथा प्रतिरक्षा अणुओं के बीच होनें वाली क्रिया –

यह एक अतिविशिष्ट क्रिया होती है। प्रत्येक प्रतिजन के लिए एक विशिष्ट प्रतिरक्षी होता है जिससे क्रिया के बाद वह प्रतिजन निरासर हो जाता है। इस क्रिया में उनके बीच कोई रासयनिक बंधन नहीं बनता। यह क्रिया पूर्णत: असहसंयोजक बंधन बलों द्वारा ही होती है जैसे कि,

1) एक एन्जाइम तथा उनके अवशेष के बीच,
2) प्रतिरक्षी की प्रतिजन के लिए बनी जगह पर, अथवा
3) प्रतिजन के उस भाग पर जिसे प्रतिजनीय पहचानने वाली जगह जिसे इपीटोप कहते है।

चित्र–1स में विकिरण प्रतिरक्षा आमापन विधि के विभिन्न चरण दिखाये गये हैं जिनका न्यूमोकोकल पॉली सेकेराईड बेक्टेरिया के मापन के लिए संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है :

1) परख नली 'अ' में टाइप–III न्युमोकोकल पॉली सेकेराईड बेक्टेरिया के प्रतिरक्षी लिए।
2) उसमें टाईप–III न्यूमोकोकल पॉली सेकेराईड बेक्टेरिया डाला गया जैसा कि परख नली 'ब' में दिखाया गया है।
3) प्रतिजन–प्रतिरक्षी संकर (Ag*-Ab) शुरू हो जाता है जिससे घोल धुंधला दिखने लगता है, जैसा कि परख नली 'स' में दिखाया गया है।
4) कुछ समय बाद यह संकर परख नली के निचले हिस्से में अवक्षेप के रूप में इकट्ठा हो जाता है, जैसा कि परख नली 'द' में दिखाया गया है।
5) अवक्षेप तथा घोल में रेडियोधर्मिता की मात्रा नापते हैं, तथा मानक चित्र के उपयोग से टाईप–III न्यूमोकोकल पॉली सेकेराईड बेक्टेरिया की मात्रा का पता आसानी से लग जाता है।

विकिरण प्रतिरक्षा आमापन विधि में सामान्यत: पॉली क्लोनल प्रतिरक्षी का उपयोग किया जाता है। उपयोग के पूर्व विषमजातीय प्रतिरक्षी के घोल का आवश्यक अनुकण किया जाता है, ताकि प्रतिजन केवल उन्हें बंधनकारक स्थानों पर आकर चिपके जिनका संतुलन स्थिरांक अधिक हो। इससे विकिरण प्रतिरक्षा आमापन विधि की सुग्राहीता बढ़ जाती है। कई आमापन में अधिक सुग्राहीता की आवश्यकता नहीं होती हैं। इन आमापनों में मोनोक्लोनाल प्रतिरक्षी का उपयोग कर इस विधि की सुग्राहीता बढ़ायी जा सकती है। इस कार्य में प्रतिजन की शुद्धता अति आवश्यक है। ^{131}I की अधिक विशिष्ट सक्रियता होने से इसकी रेडियोधर्मिता का मापन उच्च गणन दर से किया जात सकता हैं, अत: आयोडीन का यह समस्थानिक सुग्राहीता विकिरण प्रतिरक्षा आमापन के लिए उपयुक्त है। लगभग सभी प्रतिजनों को इस समस्थानिक से टंकित किया जा सकता है। जैसे क्लोरामाईन–टी से ऑक्सीकरण अथवा एन्जायमेटिक विधि जैसे लेक्टो–पेरॉक्साइडेस द्वारा। अगर इन अवशेषों का आयोडिनेशन संभव न हो तो अंत के अमोनो वर्ग ($-NH_2$) का आयोडीन द्वारा टंकन किया जाता है।

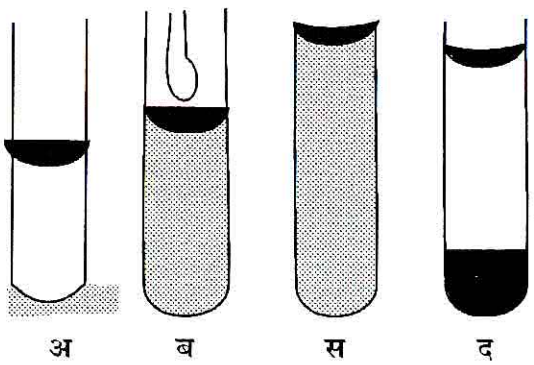

चित्र – 1 स : विकिरण प्रतिरक्षा आमापन की क्रियाविधि

प्रतिजन-प्रतिरक्षी संकर शीघ्र ही अवक्षेपित हो जाता है। परंतु विकिरण प्रतिरक्षा आमापन विधि में प्रयुक्त अभिकर्मकों की सांद्रता इतनी कम होती है कि प्रतिजन-प्रतिरक्षी संकर को घोल से अलग करना सामान्य विधियों द्वारा संभव नहीं होता है। अत: इसे अलग करने के लिए किसी यांत्रिक विधि का उपयोग आवश्यक होता है, जैसे

1) अक्रियाशील प्रतिजन को चारकोल, सेल्युलोस अथवा आयन विनिमय पर अवशोषित कर उसे अलग किया जाता है।

2) प्रतिजन-प्रतिरक्षी संकर को किसी दूसरे प्रतिरक्षी के उपयोग से अवक्षेपित किया जा सकता है। विकिरण प्रतिरक्षा आमापन का सबसे बडा अवगुण यह है कि टंकित प्रतिजन का अवकर्षण होता है। यह शायद प्रोटोलायटिक एंजाइम के कारण होता है।

द्वि-सोपान विकिरण प्रतिरक्षा आमापन –

कई पदार्थ जैसे, थाइरॉइड तथा स्टेरॉइड हारमोन रक्त में घुल कर अथवा प्रोटीन के अणु से जुड़ कर रक्त में

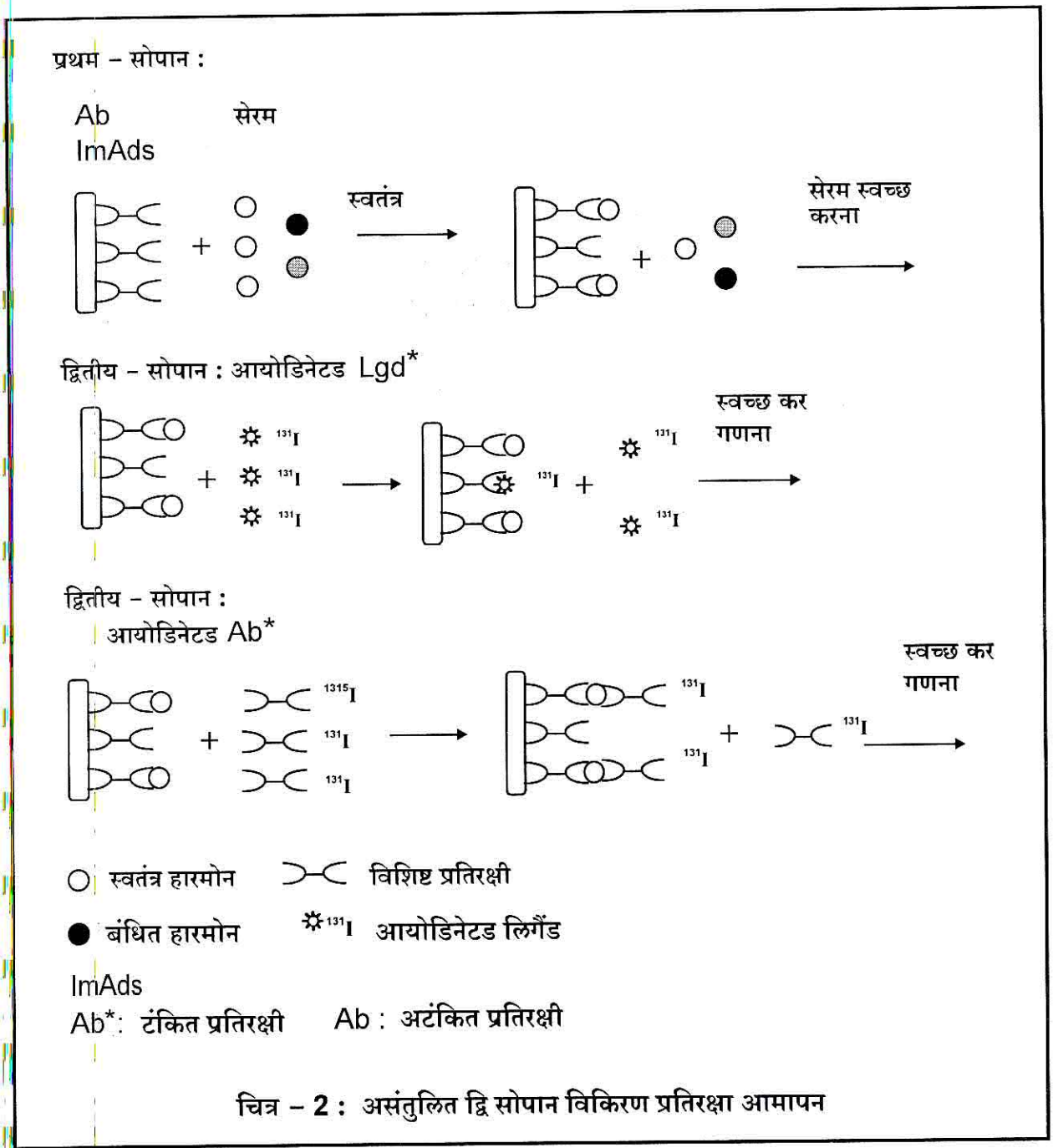

चित्र – 2 : असंतुलित द्वि सोपान विकिरण प्रतिरक्षा आमापन

शरीर के विभिन्न भागों में निरंतर प्रवाहित होते रहते हैं। अत: कई पदार्थों का इन विशिष्ट कोशिका से जुडनें वाले प्रोटीनो के उपयोग से कोशिका के अंदर पहुंचाना संभव है जो कि मुख्यत: थायरॉइड तथा स्टेरॉइड हारमोन का भंडारण करती हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि इस तरह जुड़े हारमोन की सांद्रता जैविक रूप से सक्रिय नहीं होती है।

सामान्य विकिरण प्रतिरक्षा आमापन में सेरम, अक्रिय तथा जुड़े दोनों प्रकार के हारमोन की सांद्रता मापता है। अत: थाइरॉइड तथा स्टेरॉइड हारमोन के मापन के लिए ऐसी विधि की आवश्यकता है जो कि अक्रिय तथा जुड़े दोनों प्रकार के हारमोन का मापन कर सके। यह द्वि-सोपान विकिरण प्रतिरक्षा आमापन विधि से संभव है। इस विधि में अटंकित लीगैंड तथा प्रतिरक्षी के बीच संतुलन बैठने के बाद ही इस घोल में टंकित लीगैंड तथा टंकित प्रतिरक्षी को मिलाया जाता है, जैसा कि चित्र-2 में दिखाया गया है।

विकिरण प्रतिरक्षा आमापन का गणितीय आधार पर विशलेषण –

जैसा कि हम जानते ही हैं कि विकिरण प्रतिरक्षा आमापन प्रतिस्पर्धात्मक रेडियो ग्राही आमापन विधि पर आधारित है तथा यह सभी प्रकार के विकिरण प्रतिरक्षा आमापन के लिए लागू होती है। इसे समझने के लिए स्केटचार्ट समीकरण का ज्ञान आवश्यक है, इसे परिभाषित करते समय निम्न बातों को मान लिया है –

1) हारमोन तथा ग्राही दोनों ही समघात हैं ताकि दोनों की क्रिया का एक ही रासायनिक संतुलन गुणांक हो।
2) हारमोन तथा ग्राही दोनों ही का आयाम एक है, अत: वे एक दूसरे से रासायनिक प्रतिक्रिया करने पर एक ही उत्पाद बनाते हैं।
3) बंधित हारमोन का निष्कासन शत प्रतिशत होता है यानि स्वतंत्र हारमोन से उसे पूर्णतया अलग किया जा सकता है।
4) हारमोन के टंकन से हारमोन तथा ग्राही का संकर बनने में कोई कठिनाई नहीं आती है।
5) हारमोन तथा रिसेप्टर के बीच क्रिया का रासायनिक संतुलन पूर्णतया व जल्दी से प्राप्त होता है।

हारमोन तथा रिसेप्टर के बीच किया द्रव्यमान प्रभाव नियम–

हारमोन तथा रिसेप्टर के बीच प्रतिक्रिया को निम्न समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता है,

$$H^* + R \rightleftarrows H^* - R \qquad (1)$$

$$(F) = (B) \qquad (2)$$

प्रयुक्त परिभाषाएं

H = F = स्वतंत्र हारमोन की सांद्रता

R = स्वतंत्र ग्राही की सांद्रता

HR = B = जुड़े हारमोन की सांद्रता

RO = शुरुआत में ग्राही की सांद्रता

HO = शुरुआत में हारमोन की सांद्रता

K1 = सहवास गुणांक

K2 = वियोजन गुणांक

Ka = समतुल्यता सहवास गुणांक

Kb = समतुल्यता वियोजन गुणांक

Kd = 1/ Ka = समतुल्यता वियोजन गुणांक

B/F = जुड़े तथा स्वतंत्र हारमोन के बीच समतुल्यता की स्थिति में उनकी सांद्रता का अनुपात

B/T = B/(B+F)

हारमोन तथा रिसेप्टर के बीच प्रतिक्रिया

$$H + R \underset{K2}{\overset{K1}{=}} HR \qquad (3)$$

$$\text{सहवास गति} = K1[H]^*[R] \qquad (4)$$

$$\text{वियोजन गति} = K2[HR] \qquad (5)$$

समतुल्यता की स्थिति आने पर,

$$K1[H]^*[R] = K2[HR] \qquad (6)$$

$$Ka = 1/Kd = \frac{k1}{K2} = \frac{[HR]}{[H]^*[R]} \qquad (7)$$

हारमोन तथा रिसेप्टर के बीच किया स्केटचार्ट समीकरण –

$$\frac{k1}{K2} = \frac{[HR]}{[H]} = Ka^*[R] \qquad (8)$$

अथवा यूं कहें कि,

$$B/F = Ka [Ro - B] \quad (9)$$

$$B/F = - Ka^*B + Ka^*Ro \quad (10)$$

समीकरण (10) को स्केटचार्ट समीकरण कहते हैं। अत: हारमोन तथा ग्राही के बीच प्रतिक्रिया के लिए स्केटचार्ट वक्र तैयार किया जाता है। इसके लिए B/F Y अक्ष पर तथा B X अक्ष पर लेकर अंशशोधन वक्र बनाते हैं। इस रेखाचित्र में यह रेखा Y अक्ष पर जिस स्थान पर मिलती हैं वह Ka*Ro के बराबर होता है अत: इस स्केटचार्ट वक्र के उपयोग से हम किसी भी प्रतिजन तथा प्रतिरक्षी के बीच प्रतिक्रिया का समतुल्यता सहवास गुणांक निकाल सकते हैं। उसी प्रकार Y अक्ष पर मिलने वाले बिंदु से हमें Ro प्राप्त होता है। अत: उक्त रेखा का ढ़ाल यानि $Y/X = -KRo/Ro = - K\ mole^{-1}$ मिलता है।

प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन –

(अ) सामान्य प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन –

युगली अथवा बहुआयामी प्रतिजन, प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन की मूल आवश्यकता है। एक ओर जहां सामान्य विकिरण प्रतिरक्षा आमापन विधि में टंकित प्रतिजन का उपयोग होता है, वहीं प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन विधि में टंकित प्रतिरक्षी का उपयोग किया जाता है तथा प्रतिजन की अज्ञात मात्रा का आकलन किया जाता है। अत: प्रतिरक्षी अणुओं की संख्या अधिक होने से प्रतिजन के सभी अणु प्रतिरक्षी के अणुओं के साथ जुड़ कर संकर बनाते हैं। इस विधि में एक ठोस अधिशोषक का उपयोग किया जाता है जिसमें एक ऐसा यौगिक होता है, जिसमें प्रतिरक्षी के अणुओं को इम्युनोलॉजी विधि से अवशोषित करने की क्षमता होती है, के उपयोग के घोल से अवशोषित कर लिया जाता है। बचे टंकित तथा जुड़े घटक में रेडियोधर्मिता का मापन किया जाता है। प्राप्त गणनदर प्रतिजन की मात्रा के अनुपात में होती है। इस विधि में टंकित रेडियोधर्मिता की मात्रा संकर में तथा स्वतंत्र अवस्था में ली गयी इसकी मात्रा के बीच का अनुपात, प्रतिरक्षा आमापन विधि में मिलने वाले अनुपात के एकदम विपरीत है। जहां एक ओर द्रव्यमान प्रभाव नियम, विकिरण प्रतिरक्षा आमापन में लागू होता है, वहीं प्रतिरक्षा विकिरण आमापन में लागू नहीं होता है। प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन विधि का उपयोग आज कई क्लिनिकल तथा अन्य विश्लेषण अध्ययनों में हो रहा है। इसकी बढ़ती लोकप्रियता के निम्न कारण है :-

1) टायरोसिन अवशेष न होनें के कारण कई पेप्टाइड हारमॉन का आयोडिनेशन नहीं किया जा सकता, यह उनकी आणविक संरचना में भिन्नता के कारण हो सकता है।

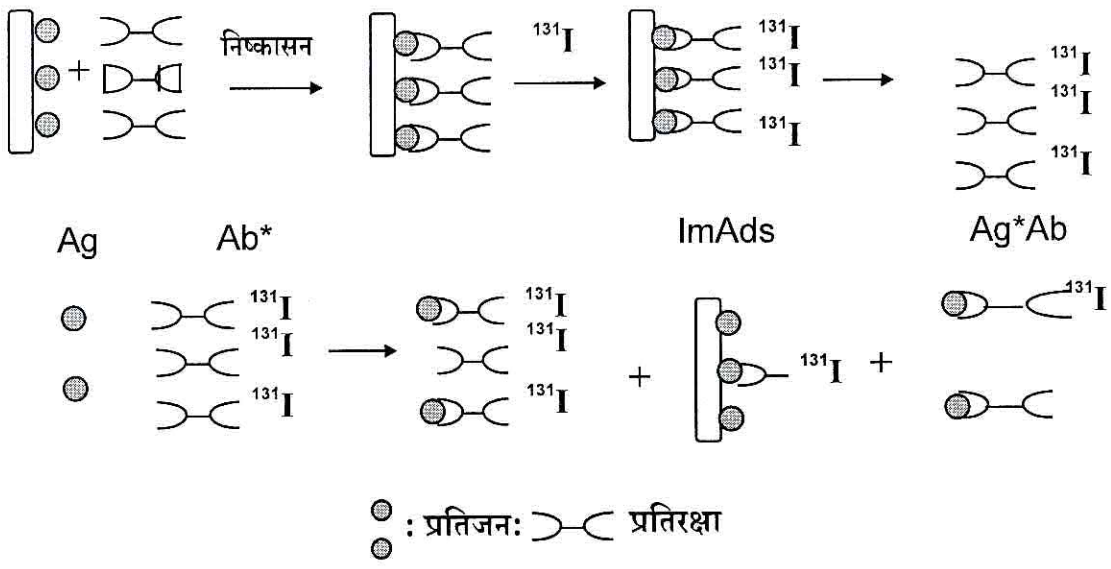

चित्र – 3 : प्रतिरक्षा विकिरण आमापन की विधि

2) आयोडीन युक्त पेप्टाइड का प्लाज्मा में एन्जाइम द्वारा प्रोटोलायटिक वियोजन हो सकता है। दूसरी ओर आयोडिनेटेड इम्यूनो ग्लोबीन अधिक स्थिर तथा समतुल्यता वाले अणु होते हैं जिसके कारण इस विधि में अधिक विश्वसनीयता तथा सत्यता पायी जाती है।

चूंकि टंकन की क्रिया में प्रतिरक्षी का शुद्धिकरण एक ठोस प्रतिजन इम्यूनो अधिशोषक के प्रयोग से होता है, अतः प्रतिरक्षी का इस ठोस अवस्था में लंबे समय तक भंडारण किया जा सकता है।

दोनों ही विधियों में सुग्राहिता इस बात पर निर्भर करेगी कि एक आदर्श स्थापित करने के लिए कितना प्रयास किया गया। वह इस बात पर भी निर्भर करेगी कि टंकित रेडियोधर्मिता कितनी है? यह भी देखा गया है कि अधिक अणुभार वाले प्रतिजन के लिए प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन, विकिरण प्रतिरक्षा आमापन विधि की तुलना से अधिक उचित विधि है। इस विधि की सुग्राहिता विकिरण प्रतिरक्षा आमापन विधि से ज्यादा है। आज सामान्यतः बिना रेडियोधर्मिता वाले टंकन की सुविधा उपलब्ध है जिन्हें अधिक सांद्रता में प्रयुक्त किया जा सकता है जिससे इस विधि की सुग्राहिता और बढ़ जाती है। विकिरण प्रतिरक्षा आमापन विधि में विशिष्टता की बाधा होने की संभावना रहती है किन्तु इस विधि में यह संभव नहीं है। परंतु इस विधि में प्रतिरक्षी अधिक मात्रा में लगते हैं। इन प्रतिरक्षी अणुओं को अधिक मात्रा में बनाना आसान नहीं है तथा इसके लिए अधिक समय भी लगता है। इसके बावजूद इण्डोक्रायनोलॉजी में इस विधि की उपयोगिता बढ़ी है मुख्यतः उन हारमोन के अध्ययनों में, जिनकी मात्रा जैव रासायनिक द्रव्यों में काफी कम होती है। उदाहरण के लिए फोलिसील हारमोन जो कि स्त्रियों में मासिकधर्म के दौरान होता है, इन्सुलिन ग्रोथ हारमोन, पेराथाइरॉइड हारमोन तथा केलसिटोनिन।

(ब) द्विस्थान प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन –

सन 1977 में एडीसन तथा हेल नें टंकित प्रतिरक्षी पर आधारित प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन की विधि में कुछ परिवर्तन सुझाए। उन्होंने इम्यूनो अधिशोषी के उपयोग से प्रतिजन की शुद्धता तथा सांद्रता बढ़ायी। यह इम्यूनो अधिशोषी इम्यूनो ग्लोब्युलिन के उस भाग से जुड़ते हैं जोकि इम्यून सेरा की ठोस कला से जुड़े होते हैं। प्रतिजन का इस इम्यूनो अधिशोषी पर से निष्कर्षण कर उसमें आयोडीन टंकित प्रतिरक्षी मिला देते हैं जो कि अन्य बची इम्यून क्रियाशील प्रतिजनी जगहों पर जाकर चिपक जाते हैं तथा इस प्रकार प्रतिजन-प्रतिरक्षी संकर बनाते हैं। यह अवक्षेप जिसमें प्रतिजन दो प्रतिरक्षी अणुओं के बीच अंतर्निष्ट हो जाता है। इसके एक ओर पर टंकित तथा दूसरी तरफ अटंकित प्रतिरक्षी अणु होते हैं तथा वे सब साथ ही ठोस इम्यूनो अधिशोषी से जुड़े रहते हैं, जिन्हें धोकर उनमें निहित रेडियोधर्मिता को नाप कर विश्लेषण किया जाता है। इस विधि का व्यवस्थित चित्रण चित्र-4 में किया गया है। द्विस्थान प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन में प्रतिरक्षी अणुओं के परत वाली परखनली को उपुयक्त तथा सरल रचना दी है जिसके कारण आज यह विधि ऐसे मापों के लिए अधिक प्रचलित व लोकप्रिय है।

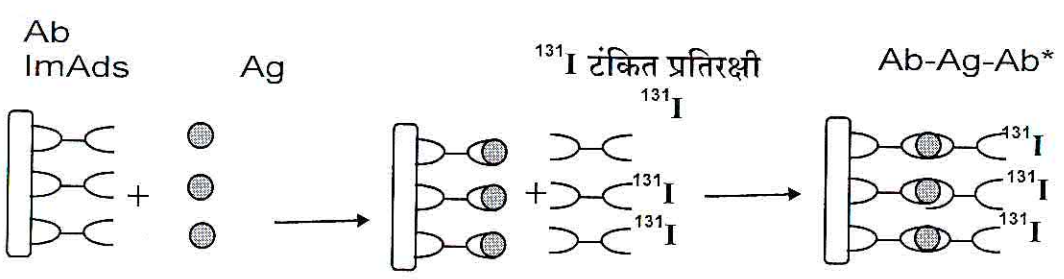

चित्र – 4 : द्विस्थान प्रतिरिक्षा विकिरणीय आमापन

(स) एक पादीय : द्विस्थान प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन –

बडी मात्रा में मोनोक्लोनल प्रतिरक्षी अणु बनाने की विधि विकसित होने के साथ साथ उनके प्रतिजन के साथ संकर बनाने की विधियों को विकसित करने के लिए किये गये लगातार प्रयत्नों के कारण उनके दो इपीटोप जोकि प्रतिजन के एक ही अणु में होते हैं की खोज के कारण मोनोक्लोनल प्रतिरक्षी अणुओं का उपयोग प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन में होने लगा।

इस तरह हम दो अलग-अलग मोनोक्लोनल प्रतिरक्षी के अणु को एक ही प्रतिजन के विभिन्न क्रियाशील प्रकोष्ठों पर केंद्रित कर सकते हैं। अटंकित मोनोक्लोनल जोकि ठोस इम्यूनो अधिशोषी से जुड़े होते हैं, युगली प्रतिजन की एक क्रियाशील जगह पर जुड़े रहते हैं उनकी दूसरी क्रियाशील जगह टंकित प्रतिरक्षी के लिए उपलब्ध रहती है।

अत: मोनोक्लोनल प्रतिजन के उपयोग से द्विस्थान प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन विधि की सुग्राहिता और बढ़ गयी है। आज हारमोन संबंधी तथा हारमोन विहीन पेप्टाइड का जैव रासायनिक द्रव्य में मापन अत्यधिक आसान हो गया है। उसी तरह दो विभिन्न जगहों पर दो मोनोक्लोनल प्रतिरक्षी अणुओं की क्रिया होने से, प्रतिजन जिसकी सांद्रता का मापन करना होता है, को इम्यूनो अधिशोषी के साथ जुड़े साधारण तथा टंकित प्रतिरक्षी के साथ इनक्युबेट किया जाता है अत: उसे शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती जो कि द्विस्थान प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन में आवश्यक होती है।

इस एक चरणीय विधि में कम समय लगता है तथा इसका उपयोग हारमोन तथा नान-हारमोनल यौगिकों के मापन के लिए बहुतायत से प्रचलित है। मोनोक्लोनल प्रतिरक्षी का उपयोग बहुत ही सूक्ष्म मात्रा में सेरम पेप्टाइड हारमोन मानवीय कोरियोनिक गोनाडोटोपीन, थाइरॉइड के केरिनोमां में उपस्थित केलसीटोनीन तथा अत्यधिक अणुभार वाले वृद्धि हारमोन इत्यादि के मापन में सफलता पूर्वक किया जा रहा है।

(द) अपरोक्ष आमापन –

प्रतिरक्षी की बहुत ही कम मात्रा का आयोडिनेशन कठिन कार्य है जिसके कारण प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन में एन्टिसेस की मात्रा अधिक लगती है। अत: उक्त मापन के लिए आवश्यक प्रतिरक्षी की मात्रा घटाने के उद्देश्य से प्रतिरक्षी अणुओं के टंकन के लिए अपरोक्ष विधि का विकास हुआ। सामान्यत: प्रतिरक्षी तथा प्रति -IgG अलग अलग विधियों द्वारा प्रतिजन अथवा प्रति -IgG इम्यूनो अधिशोषी पर शुद्ध किये जाते है तथा उसके बाद इम्यूनो अधिशोषी -IgG संकर का आयोडिनेशन यानि टंकन किया जाता है। टंकित -IgG संकर को निष्कासित कर लिया जाता है।

चूंकि प्रतिरक्षी के अणु -IgG पर पहले से ही विद्यमान रहते हैं अत: वे इम्युनोलॉजीकली सक्रिय होते है तथा टंकित -IgG को पहचान कर उस पर चिपक जाते हैं। इन द्विप्रतिरक्षी-प्रतिरक्षी -IgG टंकित संकर को निष्कासित कर लेते हैं। यह विधि चित्र-5 में दी गयी है। इस एक पादीय : द्विस्थान प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन के कई विशेषताएं है, जैसे,

1) इस विधि में एक सार्वत्रिक प्रतिरक्षी -IgG का उपयोग होता है। एक सार्वत्रिक प्रतिरक्षी -IgG का उपयोग सकारात्मक होता है।

2) प्रति -IgG का बड़ी मात्रा में उत्पादन सरल कार्य है तथा लागत खर्च भी कम आता है।

3) इनके उपयोग से इस तरह के मापन अधिक सुग्राही बन गये हैं क्योंकि प्रतिरक्षा के एक अणु पर दो या दो से अधिक टंकित -IgG के अणुओं की क्रिया होती है।

अरेडियोधर्मी प्रतिरक्षा आमापन –

रेडियोधर्मिता के उपयोग में काफी कठिनाइयां हैं जैसे गामा तथा बिटा विकिरण उत्सर्जित करने वाले समस्थानिक प्राय: कम आयु वाले होते हैं जिसके कारण उनका उपयोग जल्दी करना आवश्यक होता है। अत: उनके द्वारा टंकित रयायनों का अधिक समय भंडारण संभव नहीं है। जिसके कारण विकिरण प्रतिरक्षा आमापन की भी रसायनों के बनते समय ही करना पड़ते है। यह बहुत असुविधाजनक है। साथ ही विकिरणोत्सर्गी समस्थानिकों के उपयोग के अपने नियम होते है, जिसके कारण उनका उपयोग ऐसे कार्यों में ओर जटिल हो जाता है। रेडियोधर्मी

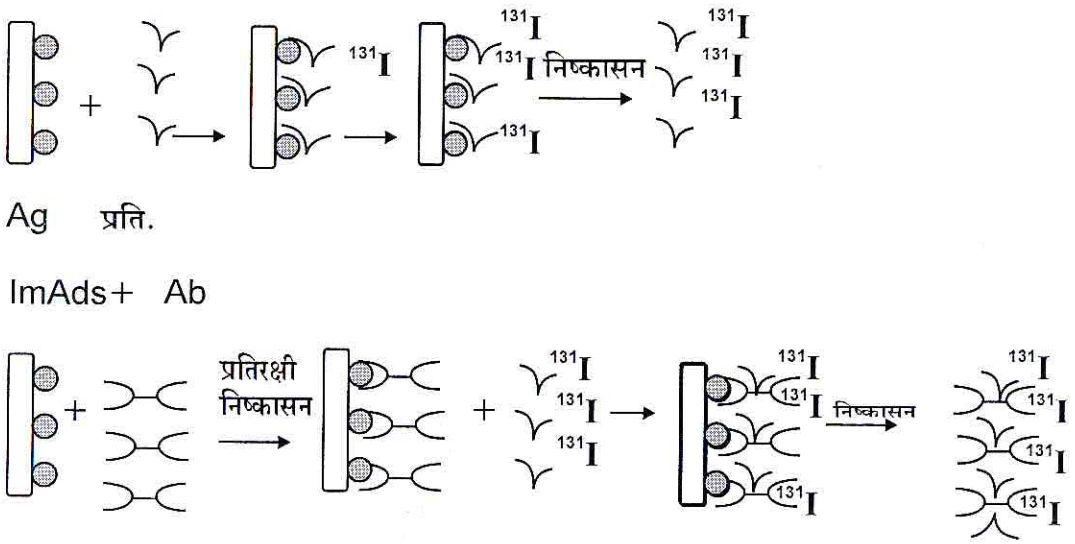

चित्र – 5 : प्रतिरक्षी टंकन की इनडायरेक्ट प्रणाली

रसायनों का फेंकना आसान नहीं है। यह एक पर्यावर्णीय समस्या है। अत: अरेडियोधर्मी प्रतिरक्षा आमापन विधियां खोजी गयी हैं तथा उनका उपयोग भी ऐसे मापनों के लिए बढ़ता जा रहा है। प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन इस तरह अधिक सुविधाजनक विधियों से किये जा सकते हैं। यहां अरेडियोधर्मी टंकनों की अधिक मात्रा का उपयोग आसानी से कर सकते हैं। तालिका – 3 में ऐसी ही कुछ विधियों की जानकारी दी गयी है।

तालिका–3 : अरेडियोधर्मी प्रतिरक्षा आमापन की कुछ प्रचलित विधियां

क्र.स.	विधि	अरेडियोधर्मी टंकन
1.	एन्जाइम प्रतिरक्षा आमापन	हार्स डिश, पेरॉक्साइडेस, अलकलाइन, फॉस्फेटेस, बिटा–गेलेक्टोसाइडेस
2.	रसोसंदीप्ति सूचक प्रतिरक्षा आमापन	एकिडिनियम इस्टरेस अल्कलाइन फॉस्फेटेस आयसोल्युमिनोल
3.	संदीप्ति प्रतिरक्षा आमापन	फ्लोरेसिन, इथिरिडियम, होडामाइन, यूरोपियम

विकिरण प्रतिरक्षा आमापन में आज उपलब्ध उन्नति मुख्य रूप से मोनोक्लोनल तथा पॉलीक्लोनल प्रतिरक्षी तथा उच्च सक्रियता वाले शुद्ध पॉलीक्लोनल प्रतिरक्षी की उपलब्धता के कारण ही है। आज यह अत्यधिक उपयोगी तथा सही विधि के रूप में विकसित हो चुकी है। प्रतिरक्षा विकिरणीय आमापन अधिक सुग्राही तथा यह लंबी सांद्रता के परिसर में लागू होती है जिसके कारण यह एंड्रोक्रायनोलॉजी, कर्करोग इत्यादि के शीघ्र पहचान के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध हो रही है। आज यह संक्रामक रोगों के जंतुओं को पहचानने के लिए भी प्रयुक्त की जा रही है। इसी के द्वारा बिना रेडियोधर्मिता के टंकन का इस कार्य के लिए विकास हुआ है।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2006) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त (अहिंदी वर्ग)

अंतरिक्ष - वर्तमान और संभावनाएं

जितेंद्र के. खर्डे

एसीटीडी/सीटा, अंतरिक्ष उपयोग केंद्र, अहमदाबाद

अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगतियों ने पिछले पाँच दशकों में अपनी अद्वितीय क्षमताओं के कारण विश्व में सामाजिक और आर्थिक क्रांति स्थापित की है। आज अंतरिक्ष विज्ञान ने समय और दूरी दोनों को ही सिकोड़कर पूरे विश्व को छोटे से प्रांत की भाँति बना दिया है। भारत ने भी अपने सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी की क्षमताओं को पहचाना और एक महत्वाकांक्षी अंतरिक्ष कार्यक्रम की शुरूआत की। विगत चार दशकों में भारत ने अंतरिक्ष प्रणालियों की अभिकल्पना, विकास तथा प्रचालन में महत्वपूर्ण प्रगति हासिल की है। परंतु अभी भी अंतरिक्ष के कई ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ पूर्ण स्वावलंबन के लिए कार्य करना शेष है। इस तरह भविष्य में अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास की काफी संभावनाएं हैं। विश्व के सभी प्रमुख देश इस कार्य में आपसी सहयोग के साथ कार्य कर रहे हैं। प्रस्तुत लेख में अंतरिक्ष विज्ञान में प्रगति जिस घटनाक्रम से विकसित हुई, उसका विवरण दिया गया है।

आधुनिक काल में जिन लोगों ने उड़ने के संबंध में गंभीरता से विचार किया उनमें तेरहवीं सदी का एक अंग्रेज पादरी भी था। वह यह ध्यान से देखता था कि चिड़ियाँ किस प्रकार से उड़ती हैं। कभी-कभी वह यह भी सोचता था कि अगर बनावटी पंख लगा दिये जायें तो मानव भी आकाश में उड़ सकता है। फ्रांस में अठारहवीं सदी में उड़ान के विषय में गंभीर प्रयोग हुए।

सन् 1783 में दो फ्रांसीसी नौजवानों ने गर्म हवा के रेशम के गुब्बारे में बैठकर आकाश में उड़ाने का सफल प्रयोग किया। बाद में हवाई जहाज का भी आविष्कार हुआ। 1920 में फ्रांस के एक सेना अधिकारी ने हवाई जहाज बनाने में सफलता हासिल की। उनका नाम था-काउन्ट झेपलिन। इसी दौरान पेट्रोल इंजन का भी आविष्कार हुआ। अंत में अमरीका के राईट बंधुओं ने पहला पेट्रोल इंजन से चलने वाला वायुयान बनाया। जिस उड़ान के बारे में मानव 13 वीं सदी में केवल कल्पना करता था, उसी उड़ान को वह 19 वीं सदी में सफलतापूर्वक कर सका। सन् 1865 में जुलै बर्न नामक वैज्ञानिक ने पता लगाया कि किसी चीज को अति वेग से ऊपर फेंका जाये तो वह धरती की पकड़ से छुट कर अंतरिक्ष में चली जाएगी और धरती पर वापस नहीं आएगी। एक और अधि-कल्पना मानव के मन में थी। चंद्रमा तक पहुँचने की। इन्ही कल्पनाओं को युक्तिसंगत बना कर परीक्षण और प्रयोग करते-करते मानव को विश्वास होने लगा कि अंतरिक्ष में पहुँचना असंभव नहीं है। फिर रॉकेट के आविष्कार ने वायुमंडल के घेरे से बाहर शून्य में उड़ सकने का मार्ग प्रशस्त किया और चंद्रमा तक पहुँचने का मार्ग भी खोल दिया। 1957 में स्पूतनिक-1 नामक कृत्रिम उपग्रह को अंतरिक्ष में सफलतापूर्वक प्रक्षेपित किया गया। इसके साथ ही मानव ने अंतरिक्ष युग में पदार्पण किया।

अंतरिक्ष विज्ञान के उपयोग :

आज मानव ने अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में अद्वितीय क्षमता हासिल की है। इस क्षमता के कारण ही आज हम कुछ ही क्षणों में पूरे ब्रह्मांड के विद्युत-चुंबकीय स्पैक्ट्रम को देख सकते हैं। साथ ही अंतरिक्ष में दो ग्रहों के बीच के स्थान का पूर्ण करने वाले क्वासर पल्सर, न्यूट्रॉन स्टार, एक्स-रे स्टार और ब्लैक होल्स के बारे में जान सकते हैं। आज मानव के पास सौरमंडल का अन्वेषण करने के लिए अंतरिक्ष में यान भेजने की क्षमता है। इतना ही नहीं अंतरिक्ष विज्ञान की विस्तृत क्षमता के कारण ही दूरसंचार, दूर-दर्शन प्रसारण, मौसम का पूर्वानुमान और अवलोकन, प्राकृतिक

संसाधनों का अध्ययन, कृषि, औद्योगिक विकास, आपदा चेतावनी और प्रबंधन, मनोरंजन, स्वास्थ्य और सुदूर शिक्षण प्रणाली आदि का विकास हुआ। सुदूर संवेदी उपग्रहों की मदद से पृथ्वी के प्राकृतिक स्रोतों की स्थिति, भौगोलिक स्थिति, खनिज संपत्ति, महासागर-समुद्री स्रोतों के अध्ययन किये जाते हैं। कृषि और वानिकी के अध्ययन के लिए भी अंतरिक्ष विज्ञान का सहारा लिया जाता हैं।

ग्लोबल पोजीशनिंग सिस्टम (GPS) अंतरिक्ष विज्ञान की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस प्रणाली ने मानव के वर्षों पुराने और जटिल प्रश्न का हल धूढ़ निकाला है। बीस साल की कड़ी मेहनत के बाद मानव आज पृथ्वी पर किसी भी कोने में हो, अपना निश्चित स्थान (पोजिशन-आक्षांश-रेखांश) और समय बता सकता है। आज हर औद्योगिक क्षेत्र में इस प्रणाली का महत्वपूर्ण उपयोग हो रहा है। आज सड़कों पर भीड़ के नियंत्रण, रेल यातायात का प्रबंधन, फ्लीट मॉनीटरिंग तथा विमानों के सही आगमन-प्रस्थान प्रणाली में जीपीएस प्रणाली बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

युद्ध में इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का संचार व्यवस्था, वायुसेना और जासूसी उपग्रहों की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण हो गई है, इसका अनुमान हम खाड़ी युद्ध के परिणामों से आसानी से लगा सकते हैं। इस युद्ध में अमरीका तथा उसके सहयोगी देशों ने अंतरिक्ष विज्ञान का महत्तम उपयोग किया था। आज कई देशों ने धरती पर निगरानी रखने के लिए अंतरिक्ष में अपने जासूसी उपग्रहों की श्रृखंला खड़ी कर दी है। यह उपग्रह हर पल की जानकारी, यहाँ तक की प्रक्षेपास्त्र (मिसाइल) दागे जाने या परमाणु विस्फोटों का पता लगाने में भी समर्थ है।

सामान्य जीवन में अंतरिक्ष तकनीकी का स्थान :

सामान्य लोगों को विशेष स्वास्थ्य सेवा प्रदान करने के लिए अंतरिक्ष विज्ञान का उपयोग हो रहा है। उपग्रह के माध्यम से दूर-दराज में स्थित रोगी के शरीर के कुछ विशिष्ट आँकड़े किसी बड़े शहर के बड़े अस्पताल के स्वास्थ्य विशेषज्ञ को भेजे जा सकते हैं, जो उपग्रह के माध्यम से समुचित सलाह दे सकता हैं। आवश्यकता पड़ने पर विशेषज्ञ उस दूर के रोगी का अपने अस्पताल में बैठे-बैठे एक्स-रे भी ले सकता हैं। उच्च विभेदक कैमरे से शहर के अस्पताल में बैठा हुआ विशेषज्ञ गांव मे बैठे किसी रोगी आँख की जाँच भी कर सकता है।

आज अंतरिक्ष विज्ञान को विश्व के दूरस्थ स्थानों में शिक्षा तथा उसके प्रसार में उपयोग में लिया जा रहा है। कृत्रिम उपग्रह संचार प्रणाली के द्वारा पृथ्वी के विशाल क्षेत्र में संचार व्यवस्था स्थापित की जा सकती है। इस विशेषता को ध्यान में रखते हुए विश्व के दूरस्थ स्थानों में शिक्षा तथा प्रसार के लिए इसे उपयोग में लाया जा रहा है।

भारत में अंतरिक्ष विज्ञान तथा तकनीक का विकास :

भारत में 1961 में परमाणु ऊर्जा विभाग को देश के सामाजिक, आर्थिक और शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए बाह्य अंतरिक्ष का उपयोग करने का काम सौंपा गया । उसके एक वर्ष बाद डॉ. विक्रम साराभाई की अध्यक्षता में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) की स्थापना की गई। 21, नवम्बर 1963 का थुंबा भूमध्यरेखीय रॉकेट प्रमोचन केंद्र(TERLS) से RH200 रॉकेट को अंतरिक्ष में छोड़ कर भारत ने अंतरिक्ष युग में पर्दापण किया।

आज इसरो (ISRO) ने देश को अंतरिक्ष सेवा प्रदान करने के लिए अपने ही देश में अभिकल्पित और निर्मित प्रमोचन रॉकेटों का उपयोग करते हुए अपने उपग्रहों के डिजाइन, निर्माण और प्रमोचन की क्षमता के साथ काफी हद तक आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। सुदूर संवेदन के क्षेत्र में भारत आई.आर. एस(IRS) उपग्रहों ने एक नयी उन्नति की है।

देश में शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति लाने के लिए हाल ही में ''एजुसैट'' उपग्रह को अंतरिक्ष में प्रक्षेपित किया गया है, जिसके उपयोग से देश के कोने कोने में स्थित शिक्षण संस्थानों (विद्यालय, महाविद्यालय, उच्च शिक्षा एवं अनौपचारिक शिक्षा) में शिक्षा दी जा रही है।

अब देश की स्वास्थ्य तथा आरोग्य संबंधित जरूरतों को देखते हुए एक ''हेल्थसेट'' नामक उपग्रह अंतरिक्ष में भेजने की योजना भी बनाई जा रही है, जो देश के दूर-दराज के क्षेत्रों में ''दूर-चिकित्सा'' (टेलीमेडीसीन) तकनीक द्वारा विशेष चिकित्सा उपलब्ध कराने के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान देगा।

अंतरिक्ष विज्ञान और तकनीक में भारत के भावी कार्यक्रम :

आज इसरो के सामने वर्तमान कार्यों के साथ 2020 तक का कार्यक्रम मौजूद है। जिसमें जी एस.एल.वी.III प्रमोचन यानों का विकास और निर्माण, प्रक्षेपण यानों का भारत की धरती से ही सफलता पूर्वक प्रक्षेपण और अंतरिक्ष में अपना स्टेशन स्थापित करना और उसका उपयोग करना।

चंद्रयान-1 भारत का पहला चंद्रमिशन 2008 के दौरान प्रमोचन के लिए निर्धारित है, जिसका मुख्य उद्देश्य चंद्रमा के उदय और विकास के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान को बढ़ाना, भारत का प्रौद्योगिकीय क्षमताओं का उन्नयन करना, और ग्रहीय विज्ञान में कार्यरत देश के युवा वैज्ञानिकों को चुनौतीपूर्ण अवसर प्रदान करना है। इसी मिशन की सफलता से भारतीय अंतरिक्ष अभियान में एक नया अध्याय जुड़ेगा।

भविष्य में बड़े-बड़े उपग्रहों को अंतरिक्ष में प्रस्थापित करने के लिए बहुचरणीय रॉकेटों की जगह एकल चरण द्वारा कक्षा प्राप्ति (single stage to orbit) यान विकसित किया जायेगा, जिससे असफलता की संभावनाएं कम हो जायेगी और दोबारा प्रयोग के लिए पृथ्वी पर वापस भी लाया जा सकेगा। देश की भौगोलिक संरचना से कुछ इलाकों में कुदरती विपत्तियों का बार-बार का सामना करना पड़ता है, इन परिस्थितियों में सुदूर संवेदन,उपग्रह संचार प्रणाली और जी.पी.एस के माध्यम से एक बृहद आपदा प्रबंदन प्रणाली का विकास किया जा रहा है, जिससे इन विपत्तियों से होने वाला आर्थिक नुकसान और मानव जानहानि कम से कम हो सकेगी।

अंतरिक्ष तकनीक की संभावनाएं :

भविष्य में अंतरिक्ष विज्ञान की आवश्यकता पर कोई भी प्रश्न या संदेह करने का साहस नहीं कर सकता। क्योंकि आज अंतरिक्ष मानव का चौथा पर्यावरण (पृथ्वी, महासागर और वायु के अलावा) बन गया है। जिसका लाभ या उपलब्धियाँ खोजना अभी बाकी है। आज अंतरिक्ष हमारे वैज्ञानिक अंतरिक्ष अनुसंधान के लिए एक प्रयोगशाला के समान है। भविष्य में वैज्ञानिक अंतरिक्ष में रहकर ऐसे पदार्थो का उत्पादन कर सकते हैं, जिनका निर्माण पृथ्वी के भारी गुरूत्वाकर्षण में असंभव या कठिन है। जिन मूल्यवान औषधियों का उत्पादन इस समय पृथ्वी पर संभव नहीं है, उनको अंतरिक्ष में शून्य अंश गुरूत्वाकर्षण में उत्पादित करना संभव हो सकेगा । सूर्य ऊर्जा से विद्युत ऊर्जा का उत्पादन, लैन्स के लिए काँच, अद्वितीय शुद्ध इलेक्टॉनिक स्फाटिक तथा बहुत से धातुओं के मिश्रण व उनका निर्माण संभव हो सकेगा।

अंतरिक्ष के कुछ खास फ़ायदे भी हैं। जैसे कि अति सूक्ष्म गुरूत्वाकर्षण, परमशून्य तापमान या अत्याधिक उच्च तापमान और अंतरिक्ष पृथ्वी से दूर भी है। अत: जो प्रयोग मानव जाति के लिए नुकसानदेह साबित हो सकते हैं वे अंतरिक्ष में आसानी से किये जा सकते हैं। अंतरिक्ष में खनन भी पृथ्वी पर दुर्लभ तत्त्वों की कमी को पूरा कर सकता है। जैसे चंद्रमा पर लोहा के अलावा और एल्युमिनियम, टाइटेनियम, आदि विपुल मात्रा में हैं। चंद्रमा के अलावा और भी ग्रह प्राकृतिक संसाधनों के असिमित स्रोत हैं।

भविष्य का समय मिनी (सूक्ष्म) उपग्रहों का होगा। छोटे-छोटे उपग्रह जिनका वजन 1 किग्रा. के आसपास होगा और आकार भी 80 सेमी. के नजदीक हो तो ऐसे छोटे-छोटे उपग्रह बहुत बड़ी संख्या में एक आकार के रूप में अंतरिक्ष में घूमते रहेंगे और ऐसा काम करेंगे जो बहुत बड़ा अंतरिक्ष यान भी नहीं कर सकता। इन्हे बनाने में कम खर्च हो सकता है। यह एक तरह का उपग्रह नेटवर्क होगा जो इंटरनेट की तरह मोबाईल सेटेलाइट सर्विस (MSS) पर्सनल लोकेशन सर्विस, तथा सैनिक कार्यवाही के दौरान बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

अतंर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन (ISS) भविष्य की सबसे बड़ी अंतरिक्ष विज्ञान और तकनीकी परियोजना है, जिसमें अमरीका, रूस, जापान, कनाडा और कई यूरोपियन देश शामिल हैं। यह स्पेस स्टेशन जल्दी ही वास्तविकता में परिवर्तित होने वाला है। जहाँ बहुत से प्रयोग अंतरिक्ष की वास्तविक स्थिति में लिये जाएंगे।

अब मानव मंगल ग्रह पर जाने की योजना भी बना रहा है। इस मिशन का उद्देश्य मंगल ग्रह पर जीवन के बारे में आँकड़ों को एकत्रित करना है। यह मिशन वहाँ पर ठोस, द्रव या वायु के रूप मे पानी की खोज भी करेगा। विश्व में लगातार बढ़ती जनसंख्या से उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिए अंतरिक्ष में कॉलोनी बनाने का विचार भी मानव का एक स्वप्न है, जो कभी न कभी वास्तविकता में बदल सकता है।

भविष्य में पारंपरिक प्रणोद्रकों के स्थान पर सौर ऊर्जा से संचालित इंजन विकसित किए जाएँगे, जिसके कारण उपग्रहों को कक्षा में 20-30 सालों तक रखा जा सकेगा। उपरोक्त विकास के साथ साथ एक रोबोटिक यान बनाने का प्रयास किया जा रहा है, जो अंतरिक्ष में घूम रहे उपग्रहों में फिर से ईंधन भर सके, आवश्यकता पड़ने पर उनकी मरम्मत कर सके और बिन उपयोगी-बेकार उपग्रहों (अंतरिक्ष मलबा) को पृथ्वी पर वापस ला सके। भविष्य में ऐसे उपग्रह बनाने की भी योजना है, जिन्हें पुन:प्राप्त किया जा सके।

लगातार बढ़ती हुई कृत्रिम उपग्रहों और उपकरणों की संख्या से भविष्य में अंतरिक्ष में ट्रैफिक (यातायात) एक समस्या बन सकती है। अंतरिक्ष में ट्रैफिक का जीपीएस प्रणाली के द्वारा नियंत्रित करने की योजना भी बनाई जा रही है। अब वह दिन दूर नहीं जब अंतरिक्ष सामान्य जन-जीवन का अभिन्न अंग बन जायेगा। हम उस दिन की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं, जब एक सामान्य नागरिक ट्रेन या बस के समान अंतरिक्ष की यात्रा भी कर सकेगा।

भारत ने भी पिछले 40 वर्षों में अंतरिक्ष विज्ञान प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रगति की है। 21 नवंबर 1963 का थुंबा के भूमध्यरेखीय रॉकेट प्रमोचन केंद्र से शुरू हुई भारत की अंतरिक्ष यात्रा आज चंद्रमिशन तक पहुँच गयी है। इसरो के भावी कार्यक्रम जी.एस.एल.वी मार्क-3 का विकास-जिससे 4 टन भार के उपग्रहों को अंतरिक्ष में छोड़ा जा सकेगा, किया जा रहा है। सन् 2020 तक पुन: प्रयोज्य रॉकेट प्रणाली का विकास करने की भी योजना हैं।

विज्ञान कविता

सर आइजक न्यूटन

बात सदियों पुरानी, २५ दिसम्बर सन् १६४२ की है,
इंग्लैंड देश के लिंकन शायर जिले के वूल्सथ्राप गाँव की है।
माता हान्ना और पिता आइजक न्यूटन एक साधारण किसान था,
संयोगवश आइजक न्यूटन ही नाम वाला, यह बालक बड़ा होनहार था।

न्यूटन सीधे स्वभाव का बड़ा ही लजीला और भोला सा बच्चा था,
हल्ला-गुल्ला से कोसों दूर, शांति प्रिय और दिल का सच्चा था।
उधमी बच्चों के साथ खेलना और लड़ाई - झगड़ा उसे नहीं भाता था,
इधर-उधर की पुस्तकें पढ़कर ही, वह अपने मन को बहलाता था।

खेती और घर के काम-काज में, उसका दिल नहीं लगता था,
विद्यालय की पढ़ाई में, उसका दिमाग कुछ कम चलता था।
वह नई बातें सीखने और नई चीजें देखना चाहता था,
छोटे-छोटे नमूने तैयार करना, उसे भली भाँति आता था।

कालांतर में न्यूटन विभिन्न परेशानियों से जूझने लगा,
अब ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र लक्ष्य ही, उसको सूझने लगा।
जून 1661 में प्रतिष्ठित ट्रिनिटी कॉलेज से मैट्रिक पास कर बड़ा नाम कमाया,
उसी कॉलेज से जनवरी 65 में बी. ए. की डिग्री हासिल कर, अपना सिक्का जमाया।

एक दिन आप बगीचे में बैठे कुछ मनन कर रहे थे,
कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्रों का चिन्तन और जनन कर रहे थे।
तभी एक बड़ा - सा सेव टूट कर, आपके मस्तक के उपर आ गिरा,
आप के मस्तिष्क में कुछ हलचल हुई और आपका दिमाग फिरा।

आपने गुरुत्व से संबंधित अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया,
विभिन्न ग्रहों और नक्षत्रों के बीच विद्यमान कर्षण का निष्पादन किया।
इन सिद्धान्तों को गणित के सूत्रों में सजाया,
गति नियमों की रूप रेखा " प्रिंसीपिया" में संजोया।

आप वैज्ञानिक और मशीनी युग के कर्णधार थे,
भौतिकी के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों के सूत्रधार थे।
आप ने द्रव्य को तीन अवस्थाओं में विराजमान होने का अनुमान किया,
आगामी माप और मशीन युग के मार्ग को प्रशस्त कर, जग का बड़ा उपकार किया।

आप ने अध्ययन काल से ही, प्रकाश के बारे में लगाव रखा,
श्वेत प्रकाश के सात रंगों में बटने की प्रक्रिया को बरकरार रखा।
आपने "ब्यास के दर्पण वाले प्रत्यावर्त्तक टेलीस्कोप का निर्माण किया,
रॉयल सोयायटी जैसे प्रसिद्ध संस्था का सदस्य बनना स्वीकार किया।

आपने गणित की अनेक जटिलतम जटिलताओं का समाधान किया,
द्विपद प्रमेय और कलन शास्त्र जैसे गूढ़ विषयों पर अनुसंधान किया।
वक्रों से घिरे हुए क्षेत्रों के क्षेत्रफल ज्ञात करने में, आपने कोइ कसर नहीं छोड़ी,
ठोस आकृतियों का आयतन ज्ञात करके, मानवता से एक अमिट नाता जोड़ी।

अंत समय तक आप विज्ञान के सागर में गोते लगाते रहे,
अनेक सिद्धांतों और अनुसंधानों से अपने मन को बहलाते रहे।
आपका अनुसंधान मानवता के लिए एक अमूल्य वरदान सबित हुआ,
२० मार्च १७२७ को आपके निधन से सारा जग प्रभावित हुआ।

राघव शैलेन्द्र कुमार सिंह
भारतीय उष्णदेशीय मौसमी विज्ञाान संस्थान, डाक घर, एन.सी.एल. पाषाण रोड, पुणे - 411 008.

हृदय : धड़कनों से खामोशी तक का सफ़र

कु. राशी मेहरोत्रा

न्यू फ्रेण्डस् कॉलोनी, मो. हुण्ड़ाल खेल, गुरूनानक अस्पताल के निकट, शाहजहाँपुर – 242 001.

मानव शरीर में हृदय का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी मांस-पेशियां अनैच्छिक व अत्यन्त लचीली होती हैं। हृदय 4 कक्षों का बना होता है – 2 अलिदं व 2 निलय। अलिंद ग्राही कक्ष हैं और निलय वितरक कक्ष हैं। हृदय एक पम्पिंग स्टेशन की भांति जन्म से लेकर मृत्यु तक बिना थके नियमित गति से निरंतर कार्य करता है। हृदय की प्रत्येक धड़कन एक कार्डियक चक्र को प्रदर्शित करती है जिसकी 4 अवस्थाएं होती हैं - शिथिलन, अलिंद, संकुचन, निलय संकुचन व निलय शिथिलन। हृदय प्रति मिनट 70 बार धड़कता है। शारीरिक व मानसिक स्थिति अनुसार हृदय प्रति मिनट 5 से 40 लीटर तक रक्त शरीर की धमनियों में भेजता है। रक्त की नलियों में प्रवाहित खून का दवाब (ब्लड प्रेशर) कहलाता है। यह 2 प्रकार का होता है - डायस्टॉलिक व सिस्टॉलिक। रक्त चाप में विकृति हृदय-रोग का प्रमुख कारण है। हमारे देश में होने वाली कुल मौतों में से 60% का कारण हृदय संबंधो बीमारियां हैं। हृदय रोग अनेक प्रकार के हैं उनमें से कुछ का विवरण व निवारण इस लेख में प्रस्तुत किया गया है।

मानव शरीर में सुचारू रूप से काम करने वाला पहला अंग हृदय ही होता है। माँ के गर्भ में पनप रहा भ्रूण जब दो सप्ताह का होता है तभी से हृदय का निर्माण शुरू हो जाता है। एक महीने बाद हृदय धड़कना शुरू कर मृत्युपर्यंत काम करता रहता है।

जीवन भर बिना थके बिना रुके काम करने वाला हृदय मुठ्ठी के आकार का होता है। हृदय खोखला व पेशीय भित्ती वाला तिकोना या शंकु की आकृति का होता है। पुरुष में हृदय का औसत भार 310 ग्राम (gm) तथा स्त्रियों में 255gm (लाल भूरे रंग) का होता है। हृदय की मांसपेशियाँ अनैच्छिक एवं अत्यंत लचीली होती हैं। हृदय मनुष्य के वक्ष के बांयी ओर तीसरी और छठी पसली के मध्य में स्थित होता है।

मानव शरीर का हृदय चार कक्ष का बना होता है। इसमें दो अलिंद तथा दो निलय होते हैं। अलिंद हृदय के ऊपरी भाग होते हैं इनका रंग गहरा तथा दीवारें पतली होती हैं। दोनों अलिंद एक अनुलम्ब पट द्वारा एक दूसरे से पूर्णतया अलग होते हैं जिसे अंतराअलिंद पट कहते हैं। अलिंद ग्राही कक्ष होते हैं। हृदय में उपस्थित वेनाकेवा वे बड़ी रक्तनलिकाएँ होती हैं जो शरीर से अशुद्ध रक्त वापस हृदय में ले जाती हैं। इनमें से एक महाशिरा सिर से, दूसरी गर्दन के हिस्सों से तथा तीसरी शेष शरीरांगों से अशुद्ध रक्त दाएँ अलिंद में लाती है। दाहिने अलिंद का रुधिर शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में जाने लगता है। दो जोड़ी पल्मोनरी शिराओं द्वारा शुद्ध रुधिर (ऑक्सीजन युक्त रुधिर) फेफड़ों से बायें अलिंद में पहुँचता है। निलय हृदय का पिछला भाग बनाते हैं। ये हल्के रंग के होते हैं। इनकी दीवारें मोटी तथा पेशीय होती हैं। निलय वितरक कक्ष है। दाहिना निलय पल्मोनरी अर्योटा द्वारा अशुद्ध रुधिर फेफड़ों को पहुँचाता है। फेफड़ों से शुद्ध रुधिर बांये निलय में आता है। बांया निलय आर्योटा द्वारा फेफड़ों को छोड़कर सारे शरीर को ऑक्सीजनित रुधिर पहुँचाता है।

हृदय एक पम्पिंग स्टेशन की भाँति जीवन भर बिना थके एक नियमित गति से रुधिर को धमनियों में पम्प करता है। हृदय की कार्डियक पेशियों में नियमित रूप से संकुचन एवं शिथिलन होता है। जिसे हृदय स्पंदन या धड़कन कहते हैं। यह प्रक्रिया जन्म से लेकर मृत्यु तक निरन्तर चलती रहती है।

अत: प्रत्येक धड़कन में एक बार संकुचन तथा एक बार शिथिलन होता है। प्रत्येक धड़कन का समय 0-8 सेकेण्ड होता है। प्रत्येक धड़कन एक कार्डियक चक्र को प्रदर्शित करती है। एक कार्डियक चक्र में चार अवस्थाएँ होती है।

1) **शिथिलन :-** शिथिलन अवस्था में अलिंद व निलय दोनों हो शिथिलन अवस्था में होते हैं। इस अवस्था में रुधिर दोनों अलिंदो में जाकर इकट्ठा हो जाता है।

2) **अलिंद संकुचन :-** इस अवस्था में रुधिर से भरे दोनों अलिंद संकुचित होते हैं तथा शिथिलन में रहते हैं। दोनों अलिंदों के सकुंचन के फलस्वरूप रुधिर अलिंद निलय कपाट से होकर निलयों में भरता है।

3) **निलय संकुचन :-** दोनों निलय रुधिर से भर जाने के बाद संकुचित होते हैं। अलिंद शिथिलन अवस्था में होते हैं। इस समय अलिंद निलय कपाट बंद हो जाते हैं निलयों में दाब बढ़ने से रुधिर अर्ध्दचन्द्राकार कपाटों को धकेलकर पल्मोनरी महाधमनी तथा अर्योटा में पहुँचता है। उस समय लब की आवाज सुनाई देती है। इसे सिस्टॉलिक आवाज भी कहते हैं।

4) **निलय शिथिलन :-** संकुचन के बाद निलयों में शिथिलन हो जाता है। अर्द्धचन्द्राकार कपाट बंद हो जाते हैं निलयों के अंदर रुधिर का दाब कम होने से अलिंद निलय कपाट खुल जाते हैं इस समय दूसरी आवाज सुनाई देती है जिसे डब कहते हैं इसे डायस्टॉलिक (शिथिलन) आवाज भी कहते हैं।

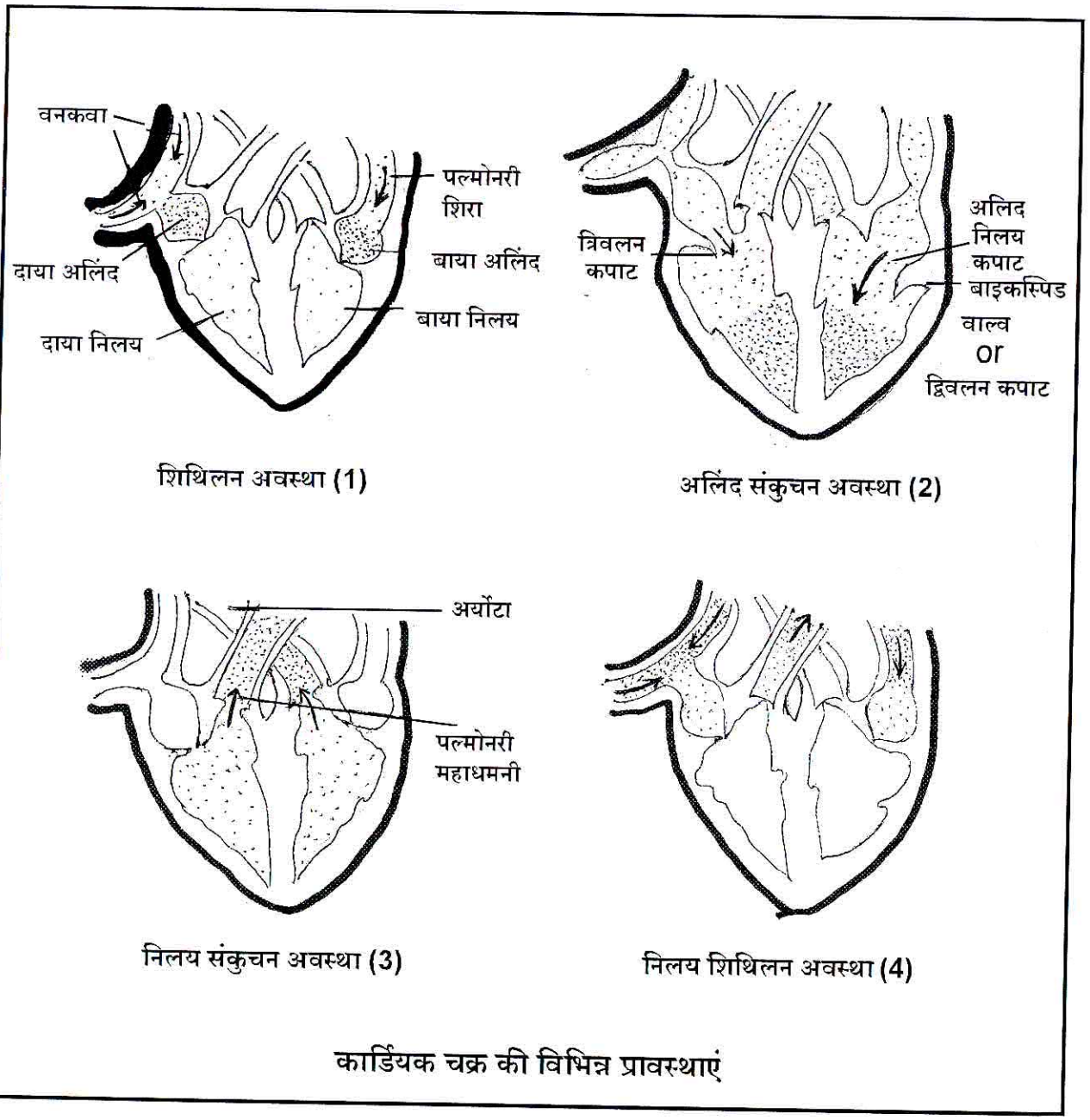

कार्डियक चक्र की विभिन्न प्रावस्थाएं

हृदय में उपस्थित पेशी ऊतक का समूह हृदय स्पंदन को प्रारंभ करता है तथा हृदय के विभिन्न कक्षों में इनका संचारण करता है। दाहिने अलिंद के ऊपरी भाग में शिरा अलिंद नोड या साइनोएट्रियल नोड उपस्थित होता है जो कि पेसमेकर (गतिचालक) कहलाता है। यह हृदय स्पंदन को प्रारंभ करता है। एक गतिनिर्धारक अलिंद निलय नोड होता है जो शिरा अलिंद नोड पर उत्पन्न संकुचन की तंरगों को ग्रहण करता है। अलिंद निलय नोड से विशेष प्रकार के पेशतन्तुओं का एक बंडल विकसित होकर अन्तरानिलय पट से गुजरता है इसे हिज का बंडल या पर्किन्जी के तन्तु कहते हैं। ये निलयों के शीर्ष पर दो भागों अलिंद नोड या गतिचालक एक के बाद एक आवेग भेजता है। प्रत्येक आवेग एक संकुचन तंरग उत्पन्न करता है जिसमें दोनों अलिंद संकुचित होते हैं। यह आवेग अलिंद निलय नोड को उत्प्रेरित करता है। ये यहाँ से उत्पन्न उद्दीपन पर्किन्जी के तन्तुओं में से होकर निलयों की भित्ति में पहुँचते हैं और उसकी पेशियों में संकुचन प्रारंभ करते हैं।

हृदय हर मिनट में औसतन 70 बार, प्रतिदिन एक लाख चार हजार बार धड़क (फैल व सिकुड़) कर 7200 लीटर रक्त को रक्त वाहिनियों में पम्प करता है। हृदय के फैलने व सिकुडने की इस रफ्तार में इतना बल होता है कि इनसे 1 मिनट में 5 लीटर रक्त शरीर की धमनियो में दौड़ जाता है, किन्तु जब हम शारीरिक या मानसिक दवाब की स्थिति में होते हैं उस समय हृदय जल्दी-जल्दी धड़ककर प्रतिमिनट 40 लीटर तक रक्त शरीर की धमनियों में भेजता है ताकि शरीर के अंगो की बढ़ी जरूरत पूरी हो सके। खून की नलियों में प्रवाहित रक्त का दवाब ब्लड प्रैशर / रक्तचाप/ रक्तदाब कहलाता है। ब्लड प्रैशर दो प्रकार का होता है।

1) **डायस्टॉलिक ब्लड प्रैशर :-** रुधिर जिस दवाब से रुधिर धमिनियों में बहता है उसे दो धड़कनों के मध्य का समयान्तराल का रक्तदाब है जिससे उसमें रक्त भरता है और हृदय को धड़कने से राहत मिलकर आराम करने का अवसर मिल जाता है अत: डायस्टॉलिक प्रावस्था के समय जो रुधिर का दाब होता है डायस्टॉलिक ब्लड प्रैशर कहते हैं।

2) **सिस्टॉलिक ब्लड प्रैशर :-** धड़कने के लिए हृदय के सिकुड़ने को सिस्टॉल कहा जाता है। निलय प्रकुंचन के कारण सिस्टॉलिक फेज में जिस दाब से रुधिर धमनियों में बहता है उसे सिस्टॉलिक ब्लड प्रैशर कहते हैं।

हृदय के सिकुड़ने पर अर्थात् हृदय के धड़कने पर रक्तदाब अधिकतम और हृदय के आराम के समय अर्थात् दो क्रमिक धड़कने के बीच के समय में यह न्यूनतम होता है। रुधिर के सिस्टॉलिक व डायस्टॉलिक ब्लड प्रैशर को मापने के लिए स्फिग्मोमैनोमीटर का उपयोग किया जाता है। सामान्यत: रक्तदाब 120 सिस्टॉलिक तथा 80 डायस्टॉलिक में होना चाहिए। 130/90 होने पर हृदय धमनियों में अवरोध की संभावना दोगुनी हो जाती है। सामान्य से कम रक्तदाब की स्थिति हाइपोटेंशन कही जाती है। असामान्य रूप से बढ़ा रक्तदाब हाइपरटेंशन कहलाता है।

एक अध्ययन के अनुसार 65 वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्तियों में 55-70% लोग उच्च रक्तचाप से पीड़ित होते हैं। अधिक रक्तचाप से वृद्धों में लकवा, दिल का दौरा पड़ने और गुर्दे की बिमारी की संभावना बढ़ जाती है। युवाओं में मुख्य रूप से डायस्टॉलिक (नीचे वाला) ब्लड प्रैशर होता है जबकि वृद्धों में मुख्य रूप से सिस्टॉलिक ब्लड प्रैशर बढ़ा मिलता है। सिस्टॉलिक रक्तचाप डायस्टॉलिक रक्तचाप की तुलना में अधिक खतरनाक होता है। शोधकतीओं के अनुसार टमाटर का रस रक्तचाप को नियंत्रित करता है। टमाटर में मुख्य रूप से लाइकोपिन पाया जाता है। लाइकोपिन दिल की बीमारी के खतरे को कम करने में सहायक होता है। रक्तदाब में विकृति हृदयरोग होने का महत्त्वपूर्ण कारक है। शरीर का सबसे कोमल अंग हृदय का गर्भावस्था में भ्रूणीय विकास के दौरान भ्रूण के अंगो का समुचित विकास न होने या हृदय की संरचना के निर्माण में त्रुटि होने पर अथवा शिशु के जन्म लेने के तुरन्त बाद होने वाले शारीरिक परिवर्तनों के अपूर्ण या दोषपूर्ण रह जाने के कारण अथवा शरीर के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तत्त्व पान तबाकू, सिगरेट, चाय, कॉफी, पानमसाला आदि पदार्थ लेने से अथवा किसी जीवाणु के संक्रमण के कारण हृदय की संरचना में विकृति आ जाने से हृदय रोगों का जन्म हो जाता है। गर्भवती महिला द्वारा कुछ दवाओं के सेवन या शराब और सिगरेट आदि से गर्भ में पल रहे बच्चे को हृदय संबंधी रोगों से ग्रस्त होने का खतरा बढ़ जाता है।

व्यक्ति का असामान्य आहार विहार-आचार

जिसके कारण न केवल हृदय वरन् संपूर्ण रक्त परिवहन तंत्र में विजातीय अपद्रव्यों के जमाव से हृदय की बनावट, रक्त वाहिनियों की दीवारों और प्राकृत पेसमेकर में असमानता आने से हृदय रोग उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सकीय तथ्यों के अनुसार कोलेस्ट्रॉल, ट्राइग्लीसेराइड और लो डेंसिटी लिपोप्रोटीन (एल.डी.एल.) बढ़ जाने पर और हाई डेंसिटी लिपोप्रोटीन (एच.डी.एल.) घट जाने की स्थिति में दिल की धमनियों में रुकावट होने लगती है। इस प्रकार यह रुकावट विभिन्न हृदय रोगों को जन्म देती है। देश में होने वाली कुल मौतों में से 60 प्रतिशत का कारण हृदय संबंधी बीमारियाँ है। सदियों से अधेड़ उम्र के लोगों के लिए मुसीबत माना जाने वाला हृदय रोग ने आज दो या तीन महीने के बच्चों को भी अपना शिकार बनाया है। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार हमारे देश में हर साल करीब 1,80,000 बच्चे हृदय रोगों के साथ जन्म लेते हैं। इसमें से 10 प्रतिशत बच्चे होश संभालने से पहले ही इस दुनिया से रुखसत हो जाते हैं।

आज विश्व भर में हो रही न केवल प्रौढ़ों वरन् युवाओं में शारीरिक अक्षमता, कार्य-क्षमता में अभूतपूर्व कमी एंव असामयिक मृत्यु का कारण विशुद्ध रूप से हृदय रोग ही है। हृदय रोग कई प्रकार के होते हैं।

सायनोटिक हृदय विकार – यह रोग भ्रूणीय विकास के दौरान ही हृदय की संरचना में होने वाले विकारों के फलस्वरूप शिशुओं में उत्पन्न हो जाता है। इस रोग से शिशुओं में ऑक्सीजनयुक्त शुद्ध रुधिर की कमी निरंतर बनी रहती है। इस रोग के कारण शिशु का शरीर विशेषतया: नाखून नीले रहते हैं। उसके रोने या किसी प्रकार का जोर लगाने से शरीर का नीलापन बढ़ जाता है। कभी - कभी उन्हें मूर्च्छा के दौरे भी पड़ते हैं। उम्र बढ़ने के साथ ऐसे बच्चों का वजन नहीं बढ़ता, थोड़ी सी शारीरिक गतिविधि बढ़ने जैसे खेलने - कूदने, चलने आदि में सांस फूलने लगती है तथा पसीना बहुत आता है।

टेकीकार्डिया – हृदय की धड़कनों का असामान्य रूप से बढ़ जाने को टेकीकार्डिया कहते हैं। वह रोग भ्रूणीय विकास के दौरान हृदय में पेसमेकर में सामान्य से अधिक मांसपेशियाँ बन जाने से उत्पन्न होता है। पेसमेकर के इस दोष के कारण साधारण सी उत्तेजना की स्थिति में हृदय के निलय बहुत तेजी से संकुचित होने लगते हैं जिससे वे न तो अलिंद से रक्त ले पाते हैं और न ही रक्त को आगे की वाहिनियों में भेज पाते हैं। फलत: रक्तचाप घट जाता है, मरीज की नब्ज डूबने लगती है, सांस उखड़ जाती है और वह मूर्छित हो जाता है।

गर्भस्थ शिशु में फेफड़े काम नहीं करते हैं अत: फेफड़े रक्त संचार परिपथ से अलग होते हैं। इस दशा में हृदय के दांये अलिंद से बांये अलिंद में रक्त परिवहन के लिए उनके बीच में एक मार्ग बना होता है। इसके लिए पल्मोनरी धमनी और महाधमनी को जोड़ने वाली एक अंतर्धमनीय नलिका (डक्टस आर्टीरियोसित्य) होती है। बच्चों के जन्म लेने पर फेफड़े काम करने लगते है। और उपयुक्त दोनों मार्ग स्वत: बंद हो जाते है किंतु यदि इनमें से एक मार्ग बंद न हो पाये तो इस दशा में बच्चों में हृदय विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

एट्रियल सेप्टल डिफेक्ट – हृदय के दोनों अलिंदो के बीच गर्भकालीन मार्ग का बन्द न होना ।

परसिस्टेंट डक्टस आर्टीरियोसिस – गर्भकालीन डक्टस आर्टीरियोसिस का बन्द न होना।

कभी-कभी हृदय कपाटिका से संबंधित निम्नलिखित हृदय रोग उत्पन्न हो जाते हैं :-

हृदय कपाटिका अवरोध – हृदय कपाटिका मार्ग के चारों और विजातीय द्रव्यों, कोलेस्ट्रॉल आदि के जमाव के कारण उत्पन्न वाल्व मार्ग के सकरे पन को हृदय कपाटिका अवरोध कहते हैं। जब यह विकार माइट्रल वाल्व में होता है तो इसे माइट्रल हृदय कपाटिका अवरोध तथा महाधमनी कपाटिका में महाधमनी कपाटिका अवरोध कहते हैं। अपद्रव्यों का जमाव हृदय कपाटिका मार्ग के चारों ओर ही नहीं होता अपितु संपूर्ण हृदय-गुहा की भीतरी दीवारों और हृदय-कपाटिका पर भी हो जाता है जिसमे हृदय मांसपेशियाँ व हृदय कपाटिका के पेशीतन्तु अपना स्वाभाविक लचीलापन खोकर बड़े हो जाते हैं और हृदय को रक्त एक प्रकोष्ठ से दूसरे प्रकोष्ठ में भेजने में काफी बल लगाना पड़ता है। परिणामत: हृदय रोगों का शिकार हो जाता है।

हृदय पाटिका रक्तपुनरागमन (वेल्व्यूलर रिगर्जीटेशन)– इस रोग में वाल्व की तन्तु पेशियों में कैल्शियम के क्षार एंव कोलेस्ट्रॉल आदि विजातीय पदार्थों

/अपद्रव्यों के जमाव के कारण कभी - कभी हृदय वाल्व की पेशियाँ इतनी कठोर हो जाती हैं कि पूरी तरह बन्द नहीं हो पाती। ऐसी दशा में हृदय के सिकुड़ने पर खून वापस पिछली गुहा में रिसने लगता है। इस दोष को हृदय पारिका रक्तपुनरागमन कहते हैं। माइट्रल वाल्व में आये इस दोष को माइट्रल रिगर्जीटेशन कहते हैं । माइट्रल वाल्व में आए इस दोष के कारण फेफड़ों का शुद्ध रक्त बाएं अलिंद में पूरे तौर पर नहीं आ पाता और अंशत: फेफड़ों में ही रुका रहता है जिससे फेफड़ों के रोग दमा, खांसी आदि होने लगते हैं।

हृदय शूल (एन्जाइना) - कोरोनरी धमनी में थक्का बन जाने या संकुचन से हृदय पेशियों को पर्याप्त रुधिर प्राप्त नहीं हो पाता है जिस से एन्जाइना रोग हो जाता है। ऐसी अवस्था में हृदय पेशियों को ऑक्सीजन प्राप्त नहीं होती जिससे आर्टीरियोस्क्लीरोसिस हो जाता है और सीने तथा कंधों में तेज दर्द होता है।

हृदय अवरोध (हार्ट ब्लॉक) - इस अवस्था में हिज बण्डल ठीक से कार्य नहीं करते क्योंकि शिरा अलिंद नोड से उत्पन्न आवेश निलय तक नहीं पहुँच पाता है, जिसके कारण निलय की गति नहीं होती और परिसंचरण रुक जाता है। यह अवस्था हृदय अवरोध कहलाती है।

कभी-कभी किसी जीवाणु आदि के संक्रमण से हृदय जन्म से या जन्म के बाद हृदय रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

कन्सट्रिक्टिव पेरीकार्डयासिस - हृदय को चारों ओर से घेरे हुए झिल्ली का सुरक्षात्मक आवरण होता है जिसे पेरिकार्डियम कहते हैं। इस अवस्था में बैक्टीरिया पेरिकार्डियम को प्रभावित करता है। इसके फलस्वरूप इसमें सूजन आ जाती है और अधिक पेरिकार्डियल द्रव्य जमा हो जाता है। इस कारण हृदय का आकार बढ़ा हुआ प्रतीत होता है जो कभी-कभी हार्ट फेल्योर का कारण बन जाता है।

हृदयान्तर-त्वचादाह - हृदय की चारों गुहाओं और वाल्वों की भीतरी सतह (अंत: त्वचा, एन्डोकार्डियम) में आ जाने वाली सूजन को हृदयान्तर त्वचादाह कहते हैं। इसके कारण वाल्व में भी खराबी आ जाती है।

हृदय पेशी का मेद-अपविकास - स्थूलकाय लोगों में मोटापा बढ़ने से शरीर के अंगों की भांति हृदय में भी चर्बी बढ़ जाती है जिससे माँस-पेशियों की कार्य क्षमता कम हो जाती है। मेद (चर्बी) वृद्धि के कारण हृदय के वाल्व भी मोटे होकर कड़े हो जाते हैं और अपना कार्य करने में अक्षम हो जाते हैं परिणामत: हृदय कपाटिका रक्तपुनरागमन, हृदय कपाटिका अवरोध जैसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

हृदय पेशी दाह - हृदय की पेशियों में सूजन आने पर उसे हृदय पेशी दाह कहते हैं । मधुमेह, इन्फ्लुऐंजा, डिप्थीरिया, मस्तिष्क-दाह, न्युमोनिया आदि रोगों में भी हृदय-पेशी-दाह रोग हो जाता है।

रिह्यूमैटिक हृदय रोग - बीटा स्ट्रेप्टोकोकस बैक्टीरिया के संक्रमण के कारण हृदय के कपाट या वाल्व खराब हो जाते हैं और हृदयपेशियाँ कमजोर हो जाती हैं। हृदय ठीक से कार्य नहीं कर पाता। इस रोग के कारण गुर्दे खराब होने की संभावना बढ़ जाती है।

हृदय में उपस्थित दो नोड धड़कन को लयबद्ध बनाये रखते हैं। ये हैं शिरा अलिंद नोड तथा अलिंद निलय नोड। ये दोनों मिलकर हृदय धड़कन की लयबद्धता बनाए रखने वाली प्राकृत पेसमेकर प्रणाली बनाते हैं।

कभी-कभी हृदय में शिर-अलिंद नोड या तो कार्य करना बंद कर देता है या उसको कोई क्षति हो जाती है। ऐसी स्थिति में हृदय की गति धीमी तथा अनियमित हो जाती है। आँखों के आगे अंधेरा छा जाता है, जोरों से पसीना आता है, बैचेनी रहती है, चक्कर आने लगते हैं या मूर्च्छा आ जाती है। कभी-कभी साइनो ऑरिकुलर, नोड (शिरा अलिंद नोड) के काम करने की अनियमितता इतनी बढ़ जाती है कि हृदय की धड़कन मात्र हृदय की फड़फड़ाहट बन कर रह जाती है जिसके फलस्वरूप हृदय उतना रुधिर नहीं फेंक पाता है जितना कि शरीर की आवश्यकता होती है। इससे रक्तवाहिनियों में रक्तप्रवाह बाधित हो जाता है। परिणामत: फेफड़ों में पानी भरने लगता है और रक्त में थक्के बनने लगते हैं। इसके निदान के लिए शल्य चिकित्सा द्वारा कृत्रिम सारनुबरिकुलर, नोड या पेसमेकर, हृदय में लगा दिया जाता है जिससे हृदय गति तथा रुधिर फेंकने की क्षमता सामान्य हो जाती है।

हृदय रोगों से ग्रस्त रोगियों को नियमित रूप से ओमेगा- 3 फैटी एसिड के कैप्सूल बतौर पूरक आहार ग्रहण करना चाहिए। ओमेगा -3 फैटी एसिड धमनियों को भीतर

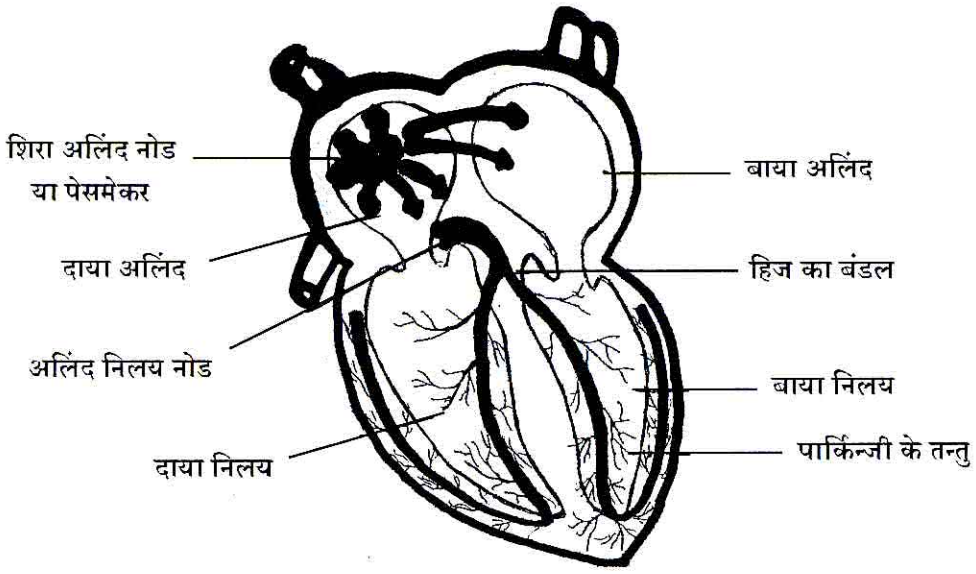

हृदय स्पंदन के लिए हृदय में संकुचन केंद्र

से मजबूत बनाता है और यह धमनियों को क्षतिग्रस्त होने से रोकता है। इसके अलावा यह हृदय की अनियमित धड़कनों को सामान्य करने में भी सहायक होता है। इजरायल के वैज्ञानिकों के अनुसार अनार का रस हृदय की हिफाजत के लिए सुपर फूड यानि सर्वोत्तम आहार का काम करता है। अनार के रस में अन्य रसों के मुकाबले एंटीऑक्सीडेंट क्षमता सबसे अधिक यानी तीन गुना ज्यादा होती है। एंटीऑक्सीडेंट वह पदार्थ होता है। जो मानव शरीर को फ्रीरेडिकल्स (रक्त के बुरे रसायनों) से बचाता है। ये फ्री रेडिकल्स ऑक्सीडेशन नाम की प्रक्रिया द्वारा कोलेस्ट्रॉल में बदल जाते हैं जो हृदय की धमनियों के कठोर होने की गति और बढ़ा देते हैं। यही हृदय रोगों का कारण बनता है। शोधकर्ताओं के अनुसार फलों तथा हरी सब्जियों में पॉलीफेनोलिक्स, टैनिन्स और एंथोसियानिस जैसे मानव शरीर के लिए हितकारी तत्त्व होते हैं। यह हमें प्रदूषण, रसायनों, जीवाणु-विषाणुओं, हृदय रोग और कैंसर जैसी घातक बीमारियों से बचाते हैं।

सर्दियों में हृदय रोगियों को अधिक सावधान रहना चाहिए। क्योंकि सार्दियों में अन्य ऋतुओं की तुलना में हृदय रोगियों की संख्या काफी बढ़ जाती है। इस मौसम में ठंड होने के कारण हृदय की धमनियाँ सिकुड़ती हैं और इस कारण हृदय की गति तेज हो जाती है इस 'स्थिति को कोल्ड शॉक' भी कहते हैं। इस मौसम में रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों का रक्तचाप बढ़ जाता है तथा हाई ब्लड प्रैशर के कारण हार्ट अटैक की संभावना भी बढ़ जाती है।

वैज्ञानिकों की एक शोध के अनुसार अपने आहार में प्रतिदिन फलों और हरी सब्जियों का प्रचुर मात्रा में सेवन करने वाले मनुष्य काफी हद तक उच्च रक्तचाप और हृदय संबंधी बीमारियों से दूर रह सकते हैं। क्योंकि फलों और सब्जियों में प्रचुर मात्रा में एंटीऑक्सीडेंट, विटामिन और खनिज तत्त्व पाये जाते हैं जो रक्त धमनियों में कोलेस्ट्रॉल का जमाव नहीं होने देते हैं।

अमरीका स्थित यूनिवार्सिटी ऑफ मैरीलैंड के कार्डियोलॉजिस्ट माइकल मिलर तथा उनकी टीम के अनुसार दिल के लिए हँसी से बेहतर कोई दवा नहीं जो कालेस्ट्रॉल घटाने में मदद करती है। इसीलिए हँसिए, हसाँइ और दिल के रोग भगाइए।

विकिरण चिकित्सा- स्वावलंबन की ओर बढ़ते कदम

भास्कर पॉल

हॉल नं. 4, पदार्थ, संसाधन प्रभाग, भा.प.अ. केंद्र, मुंबई – 400 085.

स्वास्थ्य संरक्षण एवं कैंसर जैसे जानलेवा बीमारियों के उपचार में 'विकिरण चिकित्सा' की भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है। विकिरण चिकित्सा को सहज एवं सर्व सुलभ बनाने के लिए देश के विराट वैज्ञानिक संस्थान भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई में विकिरण चिकित्सा से जुड़े तमाम पहलुओं पर नवीन शोध एवं विकास कार्य जारी है। प्रस्तुत लेख में कैंसर के उपचार में प्रयुक्त रेडिएशन थेरेपी, मशीन 'भाभाट्रॉन' एवं उपचार प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है।

मानवजाति और कर्कव्याधि का आर्विभाव लगभग एक साथ ही हुआ। सामान्यत: कोशिकाओं की वृद्धि, विभाजन और मौत एक निर्दिष्ट तरीके से होती है, जबकि कर्कव्याधि से ग्रसित कोशिकाओं की वृद्धि अनियंत्रित तरीके से होती है। और ये अबुर्द (ट्यूमर) का रूप ले लेती है। यह स्वस्थ कोशिकाओं को भी अपनी चपेट में लेकर तेजी से फैलती है। कर्कव्याधि का उपचार मुख्यत: निम्न तीन तरीके से किया जाता है :-

(क) शल्य चिकित्सा (सर्जरी)

(ख) केमो थेरेपी

(ग) विकिरण-चिकित्सा (रेडिएशन थेरेपी)

सर्जरी (शल्यचिकित्सा) में जहाँ रोग ग्रसित अंग का ऑपरेशन कर शरीर से अलग कर दिया जाता है, वहीं दूसरी ओर केमोथेरेपी में कर्कव्याधि के उपचार के लिए दवा की सहायता ली जाती है। जबकि 'विकिरण चिकित्सा' का उपयोग कर्कव्याधि के उपचार में मलिनताग्रस्त कोशिकाओं को नष्ट करने में किया जाता है। नवीनतम शोध से यह ज्ञात हुआ है कि मानव शरीर की किसी सामान्य कोशिका के मलिनताग्रस्त होने का संभावित कारण संयुक्त रूप से उस कोशिका का दुर्घटनाग्रस्त होना तथा आणविक स्तर पर प्रतिघात हो सकता है। उसके फलस्वरूप कोशिका वृद्धि अनियंत्रित होकर खर-पतवारों के तुल्य हो जाती है और अप्राकृतिक प्रवजनकारी भी हो जाती है।

विकिरण-चिकित्सा सामान्यत: तीन तरीके से की जाती है जो क्रमश: इस प्रकार है -

(क) टेलीथेरेपी / बाह्य-पुंज विकिरण-चिकित्सा

(ख) ब्रेकीथेरेपी / बंद स्रोत विकिरण-चिकित्सा

(ग) खुली-स्रोत विकिरण-चिकित्सा

इन तीनों में मुख्य अंतर विकिरण स्रोत के अलग-अलग ढंग से उपयोग पर निर्भर करता है।

टेलीथेरेपी में विकिरण स्रोत शरीर के बाहर ही रखा जाता है जबकि बंद और खुले स्रोत विकिरण-चिकित्सा पद्धति में विकिरण स्रोत को शरीर के अंदर प्रभावित अंग में रखा जाता है। ब्रेकीथेरेपी में सामान्यत: स्रोत को बाद में निकाल लिया जाता है, जबकि खुले स्रोत विकिरण चिकित्सा पद्धति में इंजेक्शन के द्वारा स्रोत को अंदर डाल दिया जाता है जिसे बाद में नहीं निकाला जाता।

संयुक्त राज्य अमरीका में 2500 कर्कव्याधि के उपचार केंद्र है जबकि भारत में न सिर्फ उपचार केंद्रों की कमी है बल्कि मौलिक सुविधाओं की भी कमी है। इस परिप्रेक्ष्य में पहला कदम 'टाटा संगठन' ने उठाया और 'टाटा मेमोरियल केंद्र' (टी.एम.सी.) के नाम से देश का सर्वप्रथम कर्कव्याधि उपचार केंद्र की स्थापना 28 फरवरी 1941 में की। सर्वेक्षण के अनुसार 10-12 मिलियन (1-1.12 करोड़) मनुष्य कर्कव्याधि से ग्रसित हैं जिनमें लगभग 52% विकासशील देशों मे हैं। भारत में ही कर्क व्याधि से ग्रसित रोगियों की संख्या 25 लाख है। भारत में 8 लाख रोगियों का निरीक्षण प्रतिदिन किया जाता है।

कर्कव्याधि से हो रही मृत्यु की संख्या के अनुसार भारत चौथे स्थान पर आता है। 2020 तक कर्कव्याधि के रोगियों की संख्या दुनियाभर में 3 करोड़ और भारत में यह

75 लाख तक हो जाएगी। जहाँ एक ओर भारत 2020 तक विकसित देशों की सूची में शामिल होने का सपना देख रहा है, वहीं दूसरी ओर भारत में कर्कव्याधि से ग्रसित रोगियों के लिए मौलिक सुविधाओं का अभी भी अभाव है। सर्वेक्षणों के परिणामों को देख कर अनायास ही यह प्रश्न उभर आता है कि, 'क्या भारत इस भयावह स्थिति का सामना करने के लिए तैयार है ?'

यह तो जे.आर.डी. टाटा और होमी भाभा की दूरदर्शिता का परिणाम था कि टी.एम.सी. की स्थापना हुयी। आज टी.एम.सी. में भारत के एक तिहाई रोगियों का इलाज होता है। टी.एम.सी. न सिर्फ भारत के बल्कि हमारे पड़ोसी देशों के रोगियों का भी इलाज करता है।

कर्कव्याधि के उपचार के स्वावलंबन की ओर पहला कदम भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र ने उठाया। विकिरण-चिकित्सा में उपयोग में लाने वाली मशीन जिसे 'टेलीथेरेपी मशीन' कहा जाता है, को भारत में ही बनाने का फैसला कर्कव्याधि के उपचार में स्वावलंबन की ओर पहला कदम था। भा.प.अ. केंद्र में 'भाभाट्रॉन' नाम से टेलीथेरेपी मशीन का निर्माण किया गया है जो न केवल सभी सुविधाओं से सुसज्जित है बल्कि काफी किफायती भी है। भाभाट्रॉन को चित्र-1 में दिखाया गया है। वास्तव में विकिरण चिकित्सा के लिए दो महत्त्वपूर्ण घटकों की जरूरत होती है :-

(क) टेलीथेरेपी मशीन

(ख) विकिरण स्रोत

टेलीथेरेपी मशीन में उच्च ऊर्जा इलेक्ट्रॉन अथवा उच्च एक्स किरण या गामा-किरण प्रदान करने वाले रेडियो समस्थानिकों जैसे कोबाल्ट-60, सीजियम-137, यूरेनियम आदि का उपयोग होता है। विकिरण स्रोत ट्यूमर से 8-100 सेमी. दूर रखा जाता है। इन सभी स्रोतों में उत्सर्जित फोटोन ऊर्जा (कुल 2.5 मेगा इलेक्ट्रॉन वोल्ट), अर्द्धआयु (5.34 वर्ष), स्रोत शक्ति को ध्यान में रखकर कोबाल्ट-60 का सर्वाधिक उपयोग होता है। उच्च ऊर्जा इलेक्ट्रॉन और एक्स-किरण की तुलना में कोबाल्ट-60 मशीन सस्ती है एवं भारत जैसे विकासशील देशों के लिए उपयुक्त भी। टेलीथेरेपी मशीन के निर्माण के समय कुछ बातों को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाता है।

चूँकि विकिरण स्वस्थ कोशिकाओं के लिए हानिकारक है, अतः स्रोत को मशीन में इस तरह से

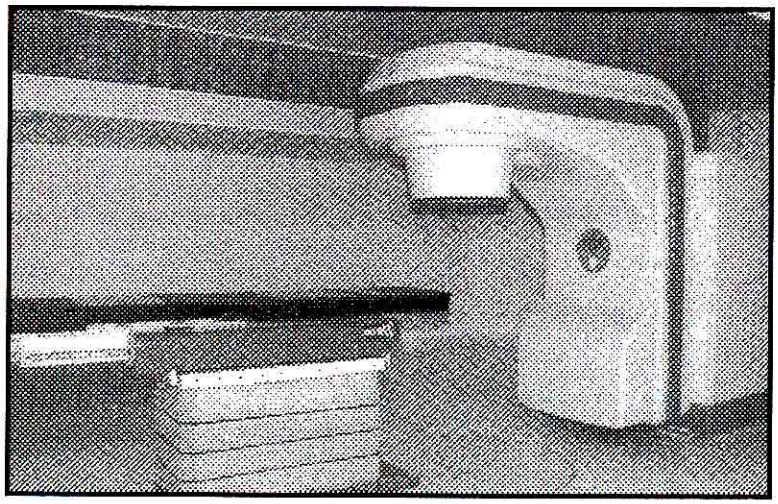

चित्र - 1 : बी. ए. आर. सी. में विकसित 'भाभाट्रॉन'

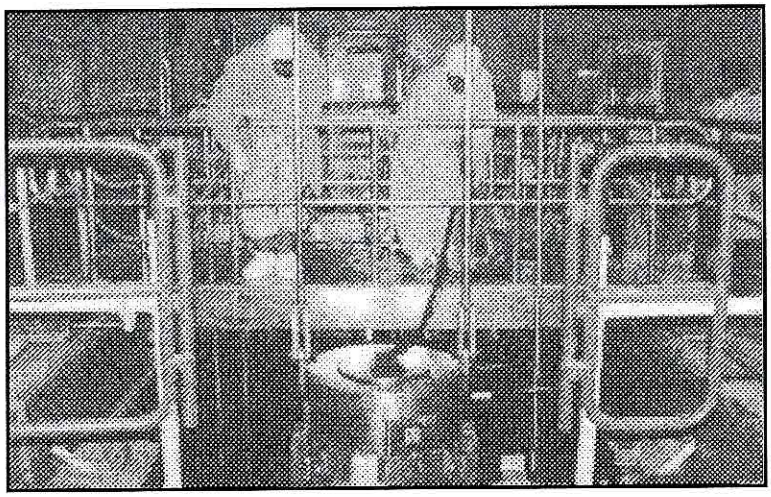

चित्र – 2 : कोबाल्ट–60 निर्माण संयत्र

स्थापित किया जाता है कि यह सिर्फ प्रभावित क्षेत्र को ही विकिरण प्रदान करे। इसके साथ–साथ विकिरण कार्यकर्ता आम आदमी और वातावरण की सुरक्षा पर भी ध्यान देना होता है। अभी तक टेलीथेरेपी मशीन तथा कोबाल्ट स्रोत का आयात करना पड़ता था। टेलीथेरेपी मशीन और कोबाल्ट के देश में निर्माण होने से कैंसर उपचार सस्ता व सुलभ हो जायेगा एवं विकसित देशों पर निर्भर भी नहीं रहना पड़ेगा।

विकिरण चिकित्सा के खर्च को कम करने के लिए न केवल मशीन का सस्ता होना जरूरी है बल्कि स्रोत का सस्ता होना, आवश्यक मात्रा में उपलब्ध होना और उसे आसानी से आवश्यक ढाँचे में परिवर्तन कर पाना भी बेहद जरूरी है। कोबाल्ट–60 प्रकृति में नहीं पाया जाता है। यह मानवनिर्मित है, जो कोबाल्ट–59 पर न्यूट्रॉन की बमबारी के बाद नाभिकीय भट्टी में बनता है। न्यूट्रॉन बमबारी की प्रतिक्रिया को इस तरीके से दर्शाया जा सकता है।

$$Co^{59} + n \longrightarrow Co^{59}$$

$$Co^{60} + n \xrightarrow{b} Ni^{59} + \square \left(\begin{array}{l}\text{दो ऊर्जा वाले } \gamma\text{-किरण 1.17 और} \\ \text{61.33 Mev मेगा इलेक्ट्रॉन वोल्ट}\end{array}\right)$$

कोबाल्ट के सात समस्थानिकों में कोबाल्ट–60 की अर्द्धआयु सर्वाधिक है। चूँकि भारत में कोबाल्ट का खनन नहीं होता अत: द्वितीयक स्रोत से कोबाल्ट का निष्कर्षण किया जाता है। अब तक Co-59 को आयात करना पड़ता था। Co-60 को नाभिकीय भट्टी में न्यूट्रॉन अधिग्रहण से बी.आर.आई.टी. (बोर्ड ऑफ रेडिएशन एन्ड आइसोटोप टेक्नोलॉजी) द्वारा बनाया जाता है।

चित्र – 2 में विकिरण कर्मचारी को कोबाल्ट–59 को नाभिकीय भट्टी में डालते दिखाया गया है। बी.ए.आर.सी. ने कोबाल्ट–59 के उत्पादन के लिए जिस द्वितीयक स्रोत का सहारा लिया है वह है 'मृत उत्प्रेरक'। यह वह उत्प्रेरक है जिसका उपयोग भारी जल बनाने में होता है। कुछ निर्दिष्ट समय के बाद उत्प्रेरक जब अपनी उत्प्रेरक क्षमता खो देता है तो उसे मृत उत्प्रेरक कहा जाता है। इस मृत उत्प्रेरक में कोबाल्ट, कोबाल्ट ऑक्साइड और अनान्य ऑक्साइड जैसे Al_2O_3, Fe_2O_3, NiO, K_2O आदि के साथ रहता है। इस मृत उत्प्रेरक से कोबाल्ट का निष्कर्षण और उसके बाद कोबाल्ट का अंतिम उपयोग आगे दिए गये प्रवाह–चित्र में दिखाया गया है।

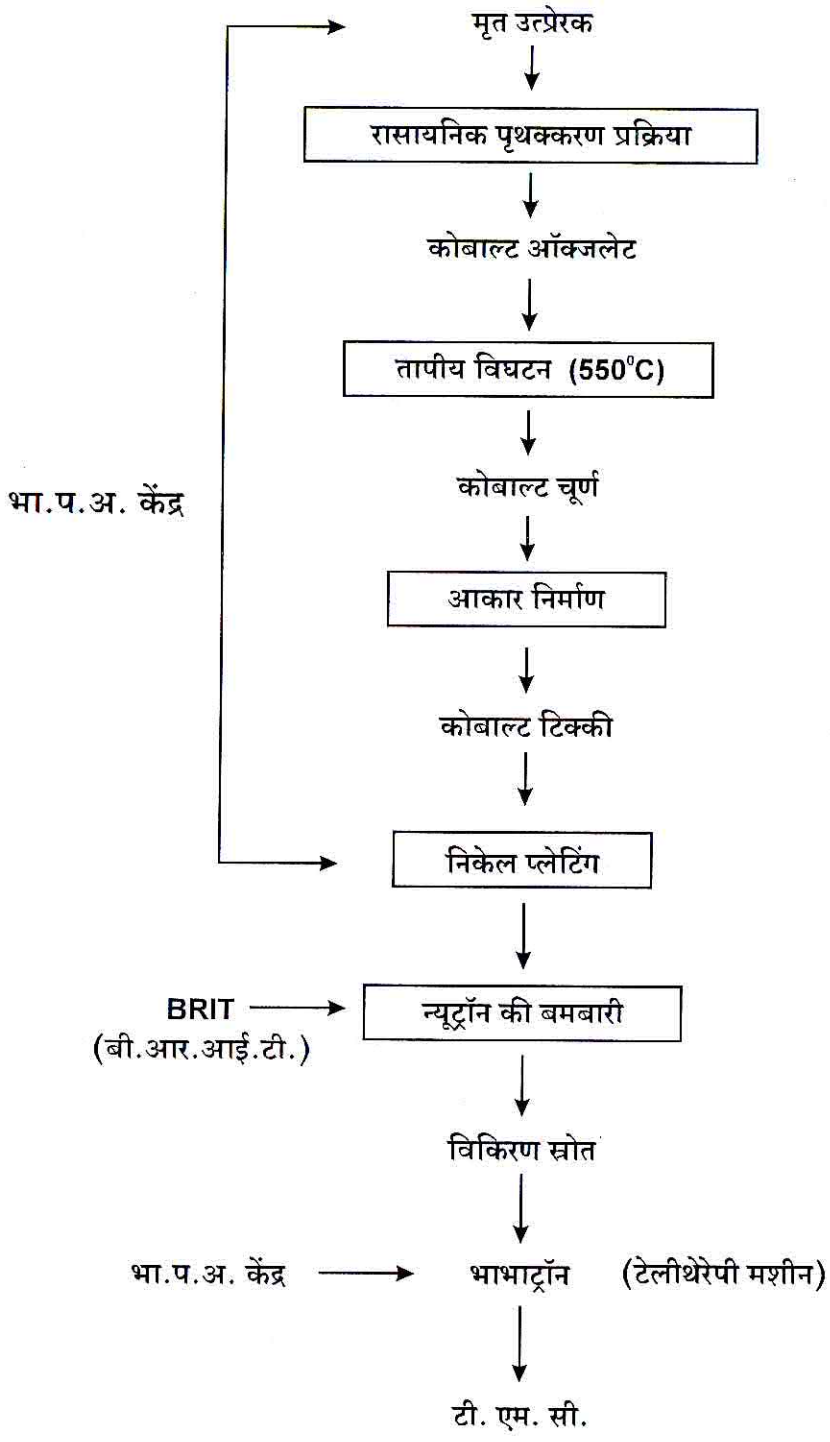

चित्र – 3 : कोबाल्ट निष्कर्षण एवं उपयोग का एक प्रवाह चित्र

भारत में 'भाभाट्रॉन' के विकास से विकिरण चिकित्सा में स्वावलंबन की नयी आशा की किरण दिख रही है। निश्चित रूप से यह मशीन विकिरण चिकित्सा खर्च और उपलब्धता दोनों दृष्टि से कर्क व्याधि से पीड़ित लोगों के लिए लाभकारी साबित होंगी।

टिप्पणियां

1. सूरज : रहस्यों की खान

पृथ्वी पर जीवन का सूत्राधार और सौरमंडल का केंद्र बिन्दु वास्तव में आग का धधकता हुआ विशालकाय गोला है। सूरज हमारी आकाशगंगा के 100 अरब से भी अधिक संख्या वाले सितारों में से एक है। यह सौरमण्डल की सबसे बड़ी संरचना है। सौरमण्डल का 99.8% से भी अधिक द्रव्यमान तो सूरज में ही समाहित है। सूरज के अलावा सौरमंडल में उपस्थित अन्य ग्रहों में से पृथ्वी पर जीवन की उपस्थिति के कारण कुछ विशिष्ट है।

सूरज का व्यास 1,400,000 किमी. है । इसके नाभिक का तापमान 21,000,000° F तथा सतह का तापमान 9300° F है। आग के इस धधकते हुए गोले में हाइड्रोजन की मात्रा 70% हीलियम की 28% और अन्य धातुएँ लगभग 2% उपस्थित हैं। सूरज में मौजूद हाइड्रोजन की मात्रा हीलियम में बदलने के कारण इसके संगठक तत्त्वों का प्रतिशत बदलता रहता है। सूरज में मौजूद हाइड्रोजन का कुल 50 फीसदी हिस्सा इसके नाभिक में है। सूरज का मध्य भाग (नाभिक नहीं) 25.4 दिनों में पूरा घूम जाता है जबकि ध्रुवों के पास घूर्णन दर 36 दिन से अधिक होती है। गैस से बने होने के बावजूद सूरज का नाभिक (कोर) किसी ठोस गोले की तरह घूमता है। ऐसा इसीलिए है, क्योंकि केंद्र में दबाव की अत्यधिक मात्रा गैसों को अति संघनित (सुपर कंडेंस्ड) कर देती है।

साधारणत: धारणाओं के अनुसार सूर्य की सतह सपाट है लेकिन 3-D चित्रों से पता चलता है कि सूर्य की सतह असमान कोशिकाओं जैसी संरचनाओं के पैटर्न से भरी पड़ी है जिनको ग्रैन्यूल्स कहते हैं। ये संरचनाएँ बेहद उच्च तापमान के सतह से उठकर सूर्य के वातावरण में विलीन होने की अवरक्त क्रिया द्वारा बनी हैं। सूर्य की सतह पर बने ग्रैन्यूल्स आकार में अमरीका के टैक्सॉस शहर जितना बड़ा है।

सूर्य की सक्रियता के एक पूरे चक्र को सोलर साइकिल कहा जाता है। इसकी अवधि लगभग 11 वर्ष होती है। इस चक्र के दौरान सूर्य की सतह पर कुछ विशेष धब्बे उभर जाते हैं। जिन्हें सनस्पॉट्स कहा जाता है। जब ये धब्बे बनते हैं तो इसमें चुंबकीय क्षेत्र में भारी परिवर्तन होते हैं जिससे विस्फोट होता है जिसके फलस्वरूप ऊर्जा विकिरण की लपटों के रूप में मुक्त होती है। जिन्हें फ्लेयर्स कहा जाता है। सोलर फ्लेयर्स के दौरान सबसे बड़ी लपट को एक्स फ्लेयर और इस पूरी घटना को सोलर मैक्सिम कहा जाता है। सूरज पर होने वाले विस्फोट सूरज के आंतरिक भाग (कोर) और ऊपरी सतह (फोटोस्फीयर) में मौजूद गैसों के तापमान में अंतर के कारण होता है।

हाइड्रोजन तथा हीलियम गैस के बने सूरज का आंतरिक सतह का तापमान लगभग 150 लाख °C और इसकी ऊपरी सतह का तापमान लगभग 6000°C होता है। इसमें तापमान का अन्तर बिल्कुल वैसा ही प्रतीत होता है जैसे किसी धधकती भट्टी के ऊपर की गर्म राख अंदरूनी भाग की तुलना में कम गर्म मालूम पड़ती है। सूर्य की ऊपरी सतह की कम गर्मी ही पृथ्वी और अन्य ग्रहों तक प्रकाश तथा ताप भेजती है यह सतह ही इसके भीतर खौलती गैसों के ताप से ग्रहों की रक्षा करती है। इसके बावजूद आंतरिक सतह की प्रचंड गर्मी ऊपरी सतह के किसी कमजोर भाग को फाड़कर बाहर निकल आती है। ऊपरी सतह पर उपस्थित अपेक्षाकृत कम गर्म गैसों से यह प्रचंड गर्मी ऊपरी सतह के किसी कमजोर भाग को फाड़कर बाहर निकल आती है। ऊपरी सतह पर उपस्थित अपेक्षाकृत कम गर्म गैसों से इस प्रचंड गर्मी का टकराव होते ही विस्फोट होता है और लाल-लाल लपटें उठने लगती है। विस्फोट से उठी इन लपटों का तापमान लगभग 100 लाख डिग्री सेंटीग्रेड और इससे 10 लाख एटम बमों के बराबर ऊर्जा उत्पन्न होती है।

सूर्य के, दृश्य किनारों के चमकीले हिस्सों को फैक्यूल कहा जाता था। फैक्यूल लैटिन शब्द है जिसका अर्थ होता है छोटी टॉर्च। वैज्ञानिकों के अनुसार फैक्यूल मैक्सिम सोलर चुंबकीय सक्रियता के दौरान उठने वाले सोलर विकिरण में तूफान के लिए जिम्मेदार होते हैं। मैक्सिम सोलर चुंबकीय सक्रियता के समय सूर्य पर सबसे ज्यादा ब्लैक स्पॉट्स उत्पन्न होते हैं जो 11 वर्ष तक बने रहते हैं। इस विस्फोट से लपटें और ऊर्जा निकलने के साथ-साथ आवेशित कणों की जबरदस्त आँधी भी उठती है जिसे 'सौर तूफान' के नाम से जाना जाता है। जिसका वेग 10 लाख किमी. प्रति घंटा होता है जो 10 लाख टन आवेशित कणों को उठाता हुआ अंतरिक्ष में बढ़ता है। इस खतरनाक तूफान से

पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों की सुरक्षा करने वाली चीज़ इन ग्रहों की चुंबकीय शक्ति है। सौरमण्डल के लगभग सभी ग्रहों का अपना-अपना चुंबकीय क्षेत्र है उसे मैग्नेटोस्फीयर कहा जाता है।

ग्रहों में चुंबकीय शक्ति इनके केंद्रीय भाग अथवा नाभिक में मौजूद तरल लौह के कारण होती है। सभी ग्रह सूरज की परिक्रमा करने के साथ-साथ अपनी धुरी पर भी घूमते हैं (हमारी पृथ्वी पर दिन रात इसी कारण से होते हैं)। इसी घूर्णन के साथ नाभिक में मौजूद तरल लौह भी घूमता है और फलस्वरूप चुंबकीय तरंगे उत्पन्न होती है जो एक चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न करती है। सूरज से उठने वाले आवेशित कणों के तूफान को ग्रहों का चुंबकीय क्षेत्र परे धकेल देता है। लेकिन सोलर साइकिल के अंत में सूर्य शांत होने लगता है तथा सूर्य के धब्बे कम होने लगते हैं। इस घटना को सोलर मिनिमम (सौर न्यूनतम) कहा जाता है।

हैथावे ने तीन सोलर साइकिल का अध्ययन किया और पाया कि सौर न्यूनतम की तीनों अवधियों के दौरान कम से कम एक शक्तिशाली एक्स फ्लेयर निकली अर्थात् अंतरिक्ष यात्री सोलर मिनिमम के दौरान भी विकिरण की संभावना उत्पन्न होती हैं अत: सूर्य कभी शांत नहीं होता।

सूरज में नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया में सूरज प्रति क्षण 386 अरब मेगाजूल ऊर्जा उत्सर्जित करता है जिससे प्रति सेकेण्ड 7000 लाख टन हाइड्रोजन 6950 लाख टन हीलियम में परिवर्तित होती है। इस प्रक्रिया में किरणों (गामा किरणों) के रूप में 50 लाख टन ऊर्जा उत्सर्जित होती है (हल्के-हल्के परमाणुओं के नाभिक के तेजी से टकराने पर कुछ बड़ा नाभिक बना लेने की क्रिया नाभिकीय संलयन कहलाती है और इस प्रक्रिया में बहुत अधिक ऊर्जा मुक्त होती है। विभिन्न सतहों में तापमान के अंतर के कारण यह प्रक्रिया ऊर्जा के उत्सर्जन और अवशोषण में सतत चक्र में परिवर्तित हो जाती है। अन्तिम सतह तक पहुँचते - पहुँचते यह उस प्रकाशपुंज में बदल जाती हैं जिसे पृथ्वीवासी 'धूप' के नाम से जानते हैं।

सूरज में ऊर्जा का उत्सर्जन और अवशोषण सौर धब्बों के कारण प्रभावित होता हैं। फ्यूजन पावर को रोक कर नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया के माध्यम से भारतीय वैज्ञानिक लघु सूर्य की कल्पना को साकार करने का प्रयास कर रहे हैं। ड्यूटीरियम और ट्राइटियम (हाइड्रोजन के आइसोटोप) की एक ही नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया से लगभग 17.6 मिलियन इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा मुक्त होती है। यह सूर्य में जबरदस्त ऊर्जा उत्पन्न करने का रहस्य है। विदेशी वैज्ञानिकों को 0.2 सेकेण्ड तथा भारतीय वैज्ञानिक को 0.3 सकेण्ड तक फ्यूजन पावर रोकने में सफलता मिली है। वैज्ञानिक हजारों सेकेण्ड तक फ्यूजन पावर रोकने के प्रयास में जुटे हैं। वैज्ञानिकों का मुख्य लक्ष्य नियंत्रित ताप नाभिकीय संलयन से पृथ्वी पर लघु सूर्य की प्राप्ति करना है।

सौर मंडल में उपस्थित अन्य ग्रह सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने के साथ अपनी-अपनी धुरी पर भी घूमते हैं। कभी-कभी ग्रहों की स्थिति बदलने के कारण चंद्रमा सूर्य और पृथ्वी के बीच आ जाते हैं। जिसे सूर्यग्रहण कहते हैं। अत: सारी दुनिया को अपनी रोशनी से रोशन करने वाले सूरज को भी कभी-कभी ग्रहण लग जाता है।

कु. शशी मेहरोत्रा
न्यू फ्रैंडस् कॉलोनी, गुरूनानक अस्पताल के समीप,
शाहजहाँपुर - 242 001.

2. औषधीय दृष्टि से उपयोगी : ग्वारपाठा

ग्वारपाठा जिसे घीकुंवार, घृतकुमारी, एलोयवेरा (Aloe Vera), इंडियन एलोय (Indian Aloe), छीगुवार आदि नामों से पहचाना जाता है वानस्पतिक भाषा में इसे 'एलोय बारबेडेन्सिस' कहा जाता हैं। यह लिलियेसी कुल (Liliaceae Family) का सदस्य है। इसका पौधा एक से दो फुट ऊचाँ बहुवर्षीय एवं मांसल (Fleshy) होता है। पत्तियाँ मांसल, भालाकार, तीन से चार इंच तक चौड़ी एवं छोटे-छोटे कॉटेयुक्त होती हैं। इन्हें छिद्रित करने पर एक लिसलिसा-सा पदार्थ निकलता है।

ग्वारपाठा एक मरूद्भिद् (Xerophyte) पौधा है, जो मुख्यत: दक्षिण तथा पूर्वी अफ्रीका देशों व भारत में भी पाया जाता है। समस्त संसार में इसकी लगभग 280 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। पश्चिमी हिमालय की घाटियों में यह बहुतायत में पाया जाता है।

ग्वारपाठा के पौधों में 6 एन्टीसेप्टिक एजेन्ट जैसे-

ल्यूपोल, सेलीसिलीक अम्ल, यूरिया, सिन्नामोनिक अम्ल, फिनोहस और गंधक पाए जाते हैं। इसमें तीन एन्टीफिलामेन्टरी फेटी एसिड्स-कॉलेस्ट्रोल, कंपर्सटेरॉल तथा बीटा-सिटोस्टेराल पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त 23 पाली पेप्टाइड्स भी पाए जाते हैं। इनके पत्तों से ही रस का निर्माण एवं इसके पश्चात् एलुआ तैयार किया जाता है, जिसमें 'एलोइन' नामक म्लूकोसाइड समूह होता है। इसके अतिरिक्त एलोइन में 'बी-बारबेलोइन' तथा 'आइसो बारबेलोइन' तत्त्व भी होते हैं। इनके साथ-साथ इनमें 'एलो-इमोडीन,' राल (Resin), गैलिक अम्ल तथा सुगंधित तेल भी होते हैं।

अनुकूल वातावरण एवं प्राप्ति स्थल के आधार पर इनकी किस्में (प्रजातियाँ) पहचानी गयी हैं -

(i) एलोवेरा प्रजाति (Aloe Vera Sps.) - यह एक मुख्य प्रजाति है जो कई स्थानों जैसे-उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व राजस्थान आदि में पायी जाती है।

(ii) एलोइन्डिका (Aloe Indica) - यह एक छोटी प्रजाति है, जो दक्षिण भारत में चेन्नई से रामेश्वरम् तक पायी जाती है।

(iii) एलो फिरोक्स (Aloe ferox) - यह अफ्रीकी प्रजाति है जो भारत में नहीं पायी जाती है।

(iv) एलो लिटोरेटिस (Aloe litoratis) - यह प्रजाति सौराष्ट्र के समुद्र तट पर प्राप्त होती है, इसके पत्ते तलवार के आकार के श्वेत बिंदुयुक्त होते है।

(v) एलो रूपसें (Aloe rufescens) यह प्रजाति बंगाल व सीमांत प्रदेश में पापी जाती है। यह सामान्यत: लाल ग्वारपाठा के नाम से जानी जाती है।

(vi) एलो एबीसिनिका (Aloe abyssinica) - यह प्रजाति काठियावाड़ व खम्बात की खाड़ियों में अधिक पायी जाती है।

उन्नत किस्म विकसित करने हेतु अनुसंधान कार्य प्रगति पर है। कुछ उच्च एलोइन कन्टेन्ट (20.7-22.8%) जीनोटाइप की एन. बी. पी. जी. आर., नयी दिल्ली द्वारा पहचान की गयी है, जैसे - I.C.11127, I.C. 11269 और I.C. 111273

ग्वारपाठा में लगभग 94% पानी व शेष 6% में 20 प्रकार के अमीनों अम्ल व कार्बोहाइड्रेट्स होते हैं। सामान्यत: इसकी पत्तियों को ही औषधि बनाने के कार्य में लाया जाता है।

हमारे देश में इससे तैयार की गई औषधियों का प्रयोग मुख्य रूप से जलन मिटाने, उदर रोग, यकृत रोग, जनन क्षमता बढ़ाने, कफ, ज्वर, शरीर की सूजन, चर्म रोगों, दांतों का हिलना व दांत दर्द, खाँसी, बवासीर, कब्ज आदि से संबंधित रोगों से छुटकारा पाने हेतु किया जाता है। इसके अतिरिक्त ग्वारपाठा का उपयोग चेहरे की सुगंधित क्रीम तैयार करने में किया जाता हैं।

आजकल ग्वारपाठा का उपयोग कैंसर जैसी बीमारियों में भी किया जा रहा है।

ग्वारपाठा की खेती कम वार्षिक वर्षा (5-25 सेमी) में भी अच्छी होती है। इसके लिए उष्ण तथा शुष्क जलवायु अच्छी होती है। सामान्य रूप से पाले के मौसम में ग्वारपाठा को क्षति पहुँचती है। ग्वारपाठा की वृद्धि मध्यम उर्वर व भारी भूमि में अच्छी होती है। यह अधिक पी-एच (लगभग 8.5 तक) सहन कर सकता है। ग्वारपाठा की जड़ अधिक गहरी नहीं होती है, अत: इसके लिए अधिक तैयारी की आवश्यकता नहीं होती है।

व्यावसायिक स्तर पर ग्वारपाठा की खेती हेतु गोबर या कंपोस्ट की खाद 10-15 टन प्रति हेक्टर देना अत्यधिक लाभदायक होता है। यदि पर्याप्त मात्रा में लकड़ी की राख उपलब्ध हो तो प्रत्यारोपण के समय देने से पौधों का जमाव अच्छा होता है।

इन फसलों में रासायनिक उर्वरक का प्रयोग सीमित मात्रा में ही करना चाहिए क्योंकि इनका संबंध सीधा स्वास्थ्य से होता है। वर्षा ऋतु में पुराने पौधों के पास छोटे पौधों को पर्याप्त दूरी पर लगाने से पौधों में पूर्ण वृद्धि एवं विकास होता है। प्रत्यारोपण जुलाई-अगस्त माह में करना चाहिए एवं सिंचाई सुविधा नुसार की जा सकता है। वैसे शीत ऋतु को छोड़कर कभी भी पत्यारोपण कर सकते है।

ग्वारपाठा की अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु आवश्यक है कि क्रांतिक अवस्थाओं पर सिंचाई की जाए। इस प्रकार प्रथम सिंचाई प्रत्यारोपण के तुरन्त बाद एवं इसके बाद 2-3 सिंचाई करनी चाहिए ताकि पौधों का जमाव अच्छा हो जाय। परिस्थितियों के अनुरूप प्रत्येक पिकिंग के उपरांत एक सिंचाई करनी चाहिए। प्रत्येक माह में ग्वारपाठा के

अतिरिक्त निकले हुए अवांछित पौधों को निकालते रहना चाहिए। एक वर्ष में दो गुड़ाई पर्याप्त होती हैं। अनुत्पादक, रोगी पौधे या सूखे फूल आदि को नियमित रूप से निकालते रहना चाहिए।

एक हेक्टेयर में लगभग 30 टन ताजे पत्ते प्राप्त होते हैं तथा एक बार फसल लगाकर पांच वर्ष तक उत्पादन ले सकते हैं। रस को प्राप्त करने हेतु पूर्ण परिपक्व व विकसित पत्तियाँ प्रयोग की जाती है। हरी व ताजी पत्तियों का भाव 2-3 रु. प्रति किग्रा. होता है। इन पत्तियों को दवाइयॉ व प्रसाधन सामग्री बनाने वालो कंपनियों को बेचा जा सकता है। मात्र 8000-10,000 रु. की लागत से प्रतिवर्ष लगभग 50,000 रु. की आमदनी प्रति हेक्टेयर प्राप्त की जा सकती है। ग्वारपाठा में कीड़ों एवं अन्य बीमारियों की समस्या उत्पन्न नहीं होती है । कभी-कभी इसमें मिलीबग, एन्थ्रेकेनोज और पर्णदाग की समस्या उत्पन्न हो जाती है, जिसे आसानी से हल्की सिंचाई द्वारा कर नियंत्रित किया जा सकता है।

रस प्राप्त करने के लिए इसके पत्तों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर मिट्टी के बर्तन में रखें, जिसमें छोटे-छोटे छिद्र हो ताकि 'एलोय-रस' बाहर निकल सके, इस बर्तन को चौड़े मुँह के दूसरे बर्तन में रखें। इसके पश्चात लकड़ी के द्वारा टुकड़ों को हिलाते रहें, रस बर्तन में नीचे एकत्र हो जाएगा। वर्तमान में इसके लिए स्वचलित यंत्र तथा विधियाँ भी विकसित हो गयी हैं।

भारत में ग्वारपाठा के बेचने में वर्तमान समय में कुछ परेशानियाँ है । जब कि विदेशों में इसकी मांग बहुतायत में है। अत: खेती करने से पूर्व बाजार की तलाश करना अति आवश्यक है । वैसे आज देश की विभिन्न कंपनियाँ ग्वारपाठा की खरीददारी, निर्यात तथा विपणन में जुड़ी हुई है ।

इसके संबंध में कुछ विशेष तथ्य इस प्रमाण हैं -

- ❑ प्रथम वर्ष उचित दलहनी या अपेक्षाकृत कम प्रतियोगी फसलों जैसे-ग्वार, मूंगफली आदि फसलों को अन्तवर्तीय फसलों के रूप में उगाकर अतिरिक्त आमदनी प्राप्त कर सकते हैं ।
- ❑ खाद व कीटनाशक के बिना उपयोग किए भी अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।
- ❑ इस पर आधारित एलुआ बनाने व सुखा पाउडर बनाने वाले उद्योगों की स्थापना की जा सकती है ।
- ❑ सुखा पाउडर व जैल की विश्व बाजार में व्यापक मांग होने के कारण विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है।
- ❑ न तो जानवर खाते हैं और न ही रखवाली करनी पड़ती है।
- ❑ पूरे वर्ष आमदनी प्राप्त होती है।

अरुण कुमार सिंह (शोधार्थी),
जंतु विज्ञान विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा (उ.प्र.)

3. उच्च ऊर्जा बॉल मिलिंग के द्वारा नैनो - संरचित मिश्रधातु का संश्लेषण

एक बड़े रथ का धुरा आकार में बहुत छोटा होता है । लेकिन रथ के स्थिरीकृत संचलन के लिए वह मुख्य घटक है । छोटी आकृतियों के बारे में जानकर हम बड़ी आकृतियों एवं संरचानाओं के गुण-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। आधुनिक विज्ञान छोटी आकृतियों और नैनोमीटर के क्रम के रूप विज्ञान का अध्ययन करता है। नैनोमीटर एक अति छोटी इकाई है। एक नैनोमीटर का मान 10^{-9} मीटर होता है । इसका यह अर्थ है कि 1 नैनोमीटर = 0.000000001 मीटर । बीसवीं सदी के उतरार्द्ध में,1 माइक्रोमीटर का परिमाप रखने वाले पदार्थों को नैना-माप भियोगिक गेजेट में प्रयोग के लिए संश्लेषित किया गया। एक माइक्रोमीटर 10^{-6} मी. होता है । 1 माइक्रोमीटर 1000 नैनोमीटर के बराबर होता है। पदार्थों द्वारा घिरी जाने वाली जगह उसके आकार व संरचना पर निर्भर करती है। जगह में कमी नैनो-विज्ञान की परिकल्पना पर आधारित है और इस सदी में इस प्रौद्योगिकी को विकसित किया गया है।

नैनो-पदार्थों के संश्लेषण में निम्नलिखित वैज्ञानिक प्रक्रियाएं महत्वपूर्ण हैं।

1. रासायनिक प्रक्रिया
2. रासायनिक सूत्रों के बिना, भौतिक व यांत्रिक प्रक्रिया का इस्तेमाल करके बड़े आकार के पदार्थों का विखंडन होता है।
3. भौतिक-रासायनिक प्रक्रिया का उपयोग इस प्रौद्योगिकी में होता है।
4. सीधे अनुप्रयोग के लिए, नैनो-संरचना के द्वारा बनाने गये

जमाव से लघु घटकों की रचना।

इस तकनीकी से संबंधित प्रौद्योगिकी की व्याख्या कई वैज्ञानिकों ने की है। बॉल मिल सामान्यत: दो तकनीकों के लिए इस्तेमाल होती है; प्रथम यांत्रिक मिलिंग तथा द्वितीय यांत्रिक मिश्रधातुकरण। श्री सूर्यनारायण की पुस्तक पदार्थों की गैर-साम्यावस्था संसाधन (Non-Equilibrium Processing of Materials) में इस तकनीकी की विस्तृत व्याख्या की गई है। इसमें गेंद की चक्की जैसे यंत्र के बारे में आधुनिक जानकारी दी गई है । इस यंत्र में तापीय ऊर्जा का प्रयोग नये पदार्थों को तैयार करने में होता है। इस यंत्र में ऊर्जा लगभग 50 डिग्री सेंटीग्रेड के बराबर होती है। यह एक यांत्रिकी यंत्र है। दो या दो से अधिक धातु पदार्थों को उनके रासायनिक माप में मिलाकर इन्हें वैयरेप्ही यंत्र में डालते है। पदार्थों के कणों का आकार छोटा होने के कारण उनके संगणन की गति एवं आकार में अप्रत्याशित वृद्धि होती है। पदार्थों का आकार कम करने के लिए स्टील या अन्य कठोर पदार्थों की छोटी-छोटी गेंदें इस्तेमाल करते है । दूसरी विधि में धात्विक मिश्रधातु को विभिन्न धातु पदार्थों को उचित मापों में लेकर, उनको धातु पदार्थों के गलनांक तापमान से ऊपर गरम किया जाता है । इन पदार्थों का गलनांक तापमान कई सौ डिग्री से. होता है । बॉल मिलिंग यंत्र को उपग्रह की तरह घूर्णक और बेलन एट्रिटर दोनों प्रकार से इस्तेमाल कर सकते हैं। यांत्रिक मिश्रधातुकरण और यांत्रिक मिलिंग दोनों ही तकनीकों में शुरू में उपयोग किए गये पदार्थ और उत्पाद मिश्रधातु पाउडर के आकार में होते हैं जिसके बहुत छोटे-छोटे कण होते हैं। अंत उत्पाद में कणों का विस्तार सीमा कुछ नैनोमीटर से 1 या 2 माइक्रॉन तक होती है। बॉल मिल का जार बहुत तेज गति से (400-600 चक्र प्रति मिनट) घूमता है। बॉल का चयन विभिन्न तरीकों से कर सकते हैं जैसे-समान व्यास की बॉल, मिश्रित व्यास की बॉल। बॉल का माप 10-15 मिमी. होता है। बॉल, बायल (जार) के घूमने की दिशा के अनुसार भिन्न दिशा में घूमती हैं। उसके बाद वह एक-दूसरे से टकराती है और बायल के दीवार से.मी. टकराती है। इसलिए मिश्रधातु तत्त्वों के बीच भौतिक अभिक्रिया होती है। साथ-साथ मिश्रधातु तत्वों के पाउडर का विखंडन भी होता है । इस दौरान आवेशित धात्विक पाउडर बॉल और जार की दीवार के बीच आ जाता है। कुछ घंटों में ही पाउडर का आकार नैनो-मीटर में हो जाता है। यह नैनो मिश्रधातु विनिर्माण परिकल्पना है। यह प्रौद्योगिकी प्रदर्शित करती है कि यांत्रिक मिलिंग विधि को कमरे के तापमान पर भी किया जा सकता है। इसलिए वैज्ञानिक यांत्रिक मिलिंग को यांत्रिक मिश्रधातुकरण के समान मानते है। यांत्रिक मिश्रधातुकरण प्रौद्योगिकी बॉल मिलिंग में अहम भूमिका निभाती है। उपग्रह बॉल मिल विस्तृत तौर पर प्रौद्योगिकी प्रयोगशालाओं और कारखानों में इस्तेमाल की जाती है।

बेलनी एट्रिटर बॉल मिल में बॉल के घूमने का पथ बेलनी

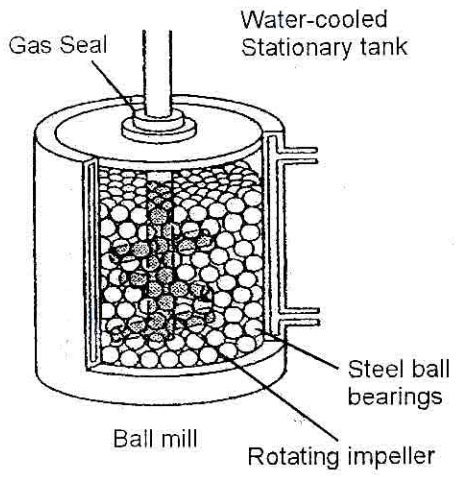

बेलनी एट्रिटर बॉल मिल

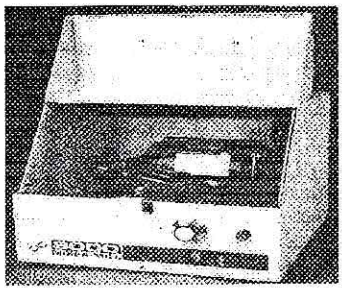

कंपित्र बॉल मिल

बॉल मिल के जार और बॉल

एट्रिटर के अक्ष द्वारा यह निश्चित होता है कि आगे जाकर बॉल का नियंत्रण किन छड़ों और किन प्लेट्स (जो कि बेलनी के अक्ष से जुड़ी होती हैं) द्वारा होता है। इसलिए मिलिंग द्वारा यांत्रिक मिश्रधातुकरण का अनुप्रयोग बड़े कारखानों में किया जा सकता है। सभी उन्नत बॉल मिलें नैनो संरचित कणों का निर्माण करने में सक्षम हैं।

जी. विजय कुमार
पदार्थ संसाधन भाग,
इंदिरा गांधी परमाणु अनुसंधान संस्थान, कलपाक्कम.

4. कांचनार – एक औषधीय वृक्ष

कांचनार मध्यम प्रमाण का एक सर्व परिचित सुलभ वृक्ष है, जो सड़कों के किनारे, उद्यानों में बहुतायात से उपलब्ध होता है। इसका वानस्पतिक नाम 'बोहेविया वेरागेटा' है, पुष्पों के रंग के आधार पर इसके दो भेद हैं :- श्वेत एवं रक्त।

श्वेत पुष्पों वाले को कांचनार माना गया है और रक्त पुष्पों वाला कोविदार या कोईलार माना गया है, रक्त पुष्प वाले कोविदार का वानस्पतिक नाम 'बोहेविया पर्प्युरिया' है।

कांचनार के पुष्प फरवरी-मार्च में और फलियाँ जो कि 1/2 से 1 फुट लम्बी होती है, अप्रैल-मई में निकलती है, इसके छाल और पुष्प औषधि के काम में आते हैं।

विविध प्रकार के चर्म रोग, त्वचा पर होने वाले व्रणों (घावों) में कांचनार की छाल के क्वाथ (काढ़े) से प्रक्षालन किया जाता है एवं छाल को पानी में घिस कर लेप भी किया जाता है।

मुँह से लार अधिक निकलती हो या मुखपाक (मुँह में छालें होना) होने पर इसकी छाल, बबूल की फली और अनार के फूलों का क्वाथ बनाकर गण्डूष (मुँह में कुल्ला भरना) कराया जाता है।

अतिसार प्रवाहिका और अर्श रोग में कांचनार त्वक् चूर्ण को छाछ के साथ दिया जाता है। पुष्पों का क्वाथ रक्तप्रदर, रक्तार्श, रक्तमेह, रक्तपित्त आदि में दिया जाता है। कब्ज होने पर इसके पुष्पों को शक्कर के साथ खिलाने से मृदुविरेचक का कार्य होता है।

उपर्युक्त विकारों में कांचनार का प्रयोग होने के साथ ही इसका जिस रोग में विशिष्ट प्रयोग किया जाता है, वह है, लसिका ग्रन्थियों का शोथ। इस वृक्ष की छाल का प्रयोग करने से एक्जो व एण्डोक्राइन ग्रन्थियों पर विशिष्ट क्रिया परिलक्षित होती है। यह अंतर्कोशीय शोथ (इण्टर सेलुलर इडिमा) को दूर करता है। पेरोटिड ग्लैंड की सूजन (मम्पस), किसी भी प्रकार के हॉट या कोल्ड नॉड्यूलर गॉयटर में इसका कार्य शोथ कम कर चयापचय का संतुलन करना है। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि यह थायरोक्सिन हार्मोन की ऑक्सीजन मेटाबोलिज्म में वृद्धि करता है एवं थायरोट्रोपिक हार्मोन का रक्त में सूक्ष्म मात्रा में संतुलन बनाकर सात्मीकरण की स्थिति बनाये रखने में सहायक है।

गले में स्थित लसिका ग्रन्थियों (लिम्फ नोड्स) की सूजन जिसे गण्डमाला (स्क्रूफ्लोरेसी) कहा जाता है, उस रोग में कांचनार की छाल के चूर्ण का प्रयोग निरापद रूप से किया जाता है, एवं लाभकारी परिणाम प्राप्त किये जाते है।

डॉ. (श्रीमती) अनुपमा चतुर्वेदी
2-भ-2, विज्ञान नगर, कोटा (राजस्थान)

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केंद्र से

तकनीकी हस्तांतरण :

1) वायु गतिज सूक्ष्म कण पृथक्कारी

पार्टिकल ऐरोडायनेमिक साइज़ सेपेरेटर (PASS) यंत्र का विकास भा.प.अ.केंद्र के पर्यावरण मूल्यांकन प्रभाग ने किया है। पर्यावरण में कई छोटे-छोटे कण, जिनके वायुगतिज व्यासों की परास 0.53-10.0 μm(माइक्रोमीटर) है, मौजूद रहते हैं। पास (PASS) नामक यह यंत्र जड़त्वीय प्रतिघात (inertial impaction) के सिद्धांत पर कार्य करता है, और कणों को उनके वायुगतिज व्यासों के अनुसार सात (साइज़) के वर्गों-अंतरालों में पृथक करता है। आयातित यंत्र के स्थान पर में इसका उपयोग किया जा सकता है।

विभिन्न राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और विश्वविद्यालयों में चल रहे वातावरणीय प्रदूषण संबंधी अनुसंधानों व ऐरोसोल (वायु-विलयों) के गुणधर्मों को निश्चित करने में यह यंत्र

सहायक होगा। व्यावसायिक क्षेत्र में रेडियो-सक्रिय और रेडियो-असक्रिय दोनों तरह के पर्यावरण के मॉनीटरन में उपयोगी होगा। धातु-कर्तन के समय, पदार्थों पर प्रक्रियाओं के दौरान तथा चूर्णन हस्तन आदि के समय यह यंत्र पर्यावरण पर नजर रखने में उपयोगी होगा। वायु-गुणवत्ता नियंत्रक व वायु-प्रदूषण तथा ऐरोसोल के अनुसंधानकर्ता इससे लाभ उठा सकेंगे।

औषधीय उद्योग जगत भी, फेफ़ड़ों को ऐरोसोल पहुँचाने वाले निकाय; जैसे दवाई-फुआरे (nebulizers) व माप-डोज वाले श्वास यंत्र (inhalers) आदि के गुणधर्मों के निर्धारण में इसका उपयोग किया जा सकता है।

इस यंत्र की तकनीकी का हस्तांतरण 3 अप्रैल, 2007 को मैसर्ज पारा इलेक्ट्रॉनिक्स (इंडिया) प्रा. लि., मुंबई को किया गया।

2) ध्वनिक उत्सर्जन विश्लेषक प्रणाली

नियंत्रण यंत्रीकरण प्रभाग (कंट्रोल इंस्ट्रूमेंटेशन डिवीजन) द्वारा विकसित प्रगत बहुचैनल (4 - चैनल), ध्वनिकता (एकॉस्टिक) उत्सर्जन विश्लेषण प्रणाली मैसर्ज क्रॉम्पटन ग्रीव्ज लि. (CGL) मुंबई को 27 अपैल 2007 को सौंपा गया।

देश में, विद्युत ट्रांसफार्मर बनाने वाली कंपनियों में, क्रॉम्पटन ग्रीव्ज एक अग्रणी कंपनी है। भा.प.अ.केंद्र द्वारा विकसित इस स्वदेशी ध्वनिक उत्सर्जन विश्लेषक के बारे में इस कंपनी को CPRI बैंगलोर में हुई राष्ट्रीय कार्यशाला के दौरान जानकारी मिली। क्रॉम्पटन ग्रीव्ज इस प्रणाली का उपयोग अपने ट्रांसफॉर्मरों के रखरखाव में करना चाहती है। ट्रांसफॉर्मरों से होने वाले आंशिक विद्युत विसर्जन, जब वे विद्युत लाइन में लगे होते हैं, उसकी अवस्था के बारे में महत्वपूर्ण नैदानिक प्राचल हो सकते हैं। आंशिक विद्युत विसर्जनों को ज्ञात करने, उनके स्थलों के बारे में जानने में यह यंत्र सहायक होगा।

ध्वनिकता उत्सर्जन विश्लेषक में शक्तिशाली नवीनतम उच्च गतिकीय हार्डवेयर लगाये गये हैं। ये प्रयोग करने में आसान है। इसमें 32-बिट वाले सॉफ्टवेयरों का, जो विडोंज 98/2000 आधारित GVI पर चलते हैं, प्रयोग किया गया है। इसे PCI बस पर आधारित किया गया है ताकि उच्च संवेश प्रवाह (through put) के दौरान ध्वनिक विसर्जन डाटा की हानि न हो तथा सरलता से इसका निष्पादन व चैनला संख्याओं को बढ़ाया जा सके।

ध्वनिक उत्सर्जन आंकड़ा विश्लेषण कार्ड (A E D A Q) चार स्वतंत्र चैनलों से ध्वनिक उत्सर्जन प्राचलों और तरंग रूपों को प्राप्त करता है। फिर यह 32-बिट डिजिटल सिग्नल प्रोसेसर (DSP) द्वारा तरंग रूपों को संसाधित और नियंत्रित करता है तथा फिल्ड प्रोग्रामेबल गेट ऐरों (FPGAS) से वास्तविक समय के ध्वनिकता उत्सर्जन प्राचलों को निकालता है। आगत सेक्शन में प्रोग्रामनीय लब्धि प्रावर्धक (गेन एम्प्लीफायर) और बैंड-पारक फिल्टर होते हैं। विंडो आधारित सॉफ्टवेयर में तीन प्रचालन मोड हैं: प्राचल प्राप्ति मोड, तरंग-रूप मोड और स्रोत स्थिति मोड।

मैसर्ज क्रॉम्पटन ग्रीव्ज लि. ग्लोबल, आर एंड डी केंद्र ने भा.प.अ.केंद्र ध्वनिकता उत्सर्जन विश्लेषक प्रणाली का इस्तेमाल कर विद्युत लाइन में लगे बिजली ट्रांसफॉर्मरों में होने वाले आंशिक विसर्जन को ज्ञात करने और मॉनीटरन करने हेतु यंत्र का विकास पूरा कर लिया है। क्रॉम्पटन ग्रीव्ज लि. के कर्मियों ने इस प्रणाली का ASTME-750 मानक पर परीक्षण किया है।

विकास के कार्य

1) निर्जीवाणुक [F-18] Na F का उत्पादन

[F-18] Na F पॉजीट्रॉन उत्सर्जक रेडियो भेषज है,जिसका इस्तेमाल पॉजिट्रॉन उत्सर्जक बिंबन (PET) में, भिन्न भिन्न बीमारियों, विशेषत: अस्थि-रोगों के निदान होता है।

1970 तक अस्थि रोगों यथा संधिशोध (आर्थ्राइटस्), अस्थि-क्षय, उत्तक-क्षय, अस्थि मेरु मज्जा शोथ(ऑस्टियो माइलिटिस), चोट आदि में, क्ष-किरण फिल्मपर बिंब बनाकर निदान किया जाता था, पर अब अस्थि क्रमवीक्षण (बोन-स्केन) का इस्तेमाल हो रहा है। हड्डियों में विक्षेप को पकड़ने की सुग्राहकता, क्ष-किरणों में 78% और अस्थि क्रमवीक्षण में 95% तक है। औसतन बोन स्केन द्वारा, क्ष-किरणों की अपेक्षा करीब छ: माह पूर्व ही अस्थि क्षति के बारे में पता चल जाता है। ऐसा इसलिए संभव है क्योंकि रेडियो न्यूक्लियाड क्रमवीक्षण से अस्थियों के गठन में परिवर्तन होने से पहले वाली अवस्था का भी पता चल जाता है।

रेडियोधर्मी न्यूक्लियाडों; $^{99m}T_c$ फॉस्फेट ($^{99m}T_c$ - PYP) और $^{99m}T_c$- फॉस्फोनेट SPECT, रेडियोभेषज ($^{99m}T_c$ - MDP, $^{99m}T_c$ - HMDP, $^{99m}T_c$ - HEDP आदि) द्वारा अस्थि क्रमवीक्षण किया जाता है। पिछली दशाब्दी से अल्प आयु वाले PET रेडियोधर्मी न्यूक्लियाडों के उत्पादन हेतु सुसंहत (कांम्पेक्ट) चिकित्सा - साइक्लोट्रॉन कम लागत वाले स्रोत सिद्ध हुए हैं। इन न्यूक्लियाडों को स्वचालित रसायनिक संश्लेषक का उपयोग कर शीघ्रता से PET रेडियो भेषजों में बदला जा सकता है।

उन्नत PET (पॉजीट्रॉन एमीशन टोमोग्राफी) स्केनरों की मदद से विभिन्न बिमारियों का बिंबन उत्कृष्ट सुग्राहिकता से संभव है। [F-18] Na F का उपयोग कर कई दलों ने अस्थि-फिज्योलॉजी का PET - बिंबन द्वारा अध्ययन किया है। अब [F-18] Na F की देश में उपलब्धता से भारत में भी यह अध्ययन किया जाता सकता है। CT - PET का संगम PET - बिंबन को अधिक प्रभावशाली बना देता है। [F-18] द्वारा अस्थि क्रमवीक्षण के कई फायदे हैं। $^{99m}T_c$फॉस्फेटों की तुलना में [F-18] Na F अच्छा अस्थि-खोजी है। अत: मरीज को इसका इंजेक्शन लेकर $^{99m}T_c$ के मुकाबले कम प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इतना ही नहीं अस्थियां, $^{99m}T_c$ - MDF की अपेक्षा इसे दुगनी मात्रा में ग्रहण करती हैं। [F-18] Na F दोनों ही तरह के दृढ़ पटल (Sclerotic) व लयन (Lytic) अस्थि विक्षेप को संसूचित करने में अधिक प्रभावी है। PET - बिंबन F-18 फ्लोराइड बिंबन को, $^{99m}T_c$ - MDF - बिंबन की तुलना में, ज्यादा सुस्पष्ट बनाता है, क्योंकि इसका S/N (सिग्नल / नॉयज) अनुपात अधिक होता है।

रेडियो रसायनिकी एवं आइसोटोप वर्ग के लेबोरेटरी न्यूक्लियर मेडिसन सेक्शन तथा टाटा मेमोरियल सेंटर के बायो इमेजिंग यूनिट ने यह संभव कर दिखाया है। अब [F-18] Na F की कई अस्पतालों को नियमित रूप से आपूर्ति की जाती है।

2) नवजात शिशु में जन्मना हाइपोथायरोडिज्म का परीक्षण :

बच्चों में बुद्धि-मंदन का एक सामान्य कारण है। जन्मजात हाइपोथायरोडिज्म (CH) । यदि जन्म के बाद कुछ ही दिनों में इस बीमारी का निदान किया जा सके तो इसको आसानी से रोका जा सकता है।

जब शिशु-जन्म कम-थायरॉडीय हारमोन उत्पादन के साथ होता है, तब होने वाली बीमारी के लक्षण ही जन्मजात थायरॉडिज्म है। नवजात में हाइपोथायरोडिज्म के कई कारण हैं; थायरॉयड-ग्रंथि की अनुपस्थिति या उसका अनियमित विकास, माता के गर्भाशय में ही थायरॉयड-ग्रंथि का नष्ट हो जाना, पिट्युटरी ग्रंथि द्वारा थायरॉयड-ग्रंथि को उत्तेजित करने में असफलता आदि। इनमें सबसे ज्यादा पाया जाने वाला विकार थायरॉयड-ग्रंथि का अपूर्ण विकास है। इस रोग से प्रभावित अधिकतर बच्चों की बढ़ोत्तरी ठीक से नहीं होती है, उन्हें अनुत्क्रमणीय (irreversible) बुद्धिमंदन हो जाता है, और साथ ही उनमें कई तरह की तंत्रिका मनोवैज्ञानिक कमियां (neuropsychological deficits) रह जाती हैं। रोग विषयक लक्षणों से करीब 3 माह की आयु में बीमारी का निदान होता है। पर तब तक काफ़ी देर हो चुकी होती है। शिशु के दिमाग में अनुत्क्रमणीय हानि हो जाती है।

सर्वेक्षण के अनुसार उत्तरी अमरिका और यूरोप में 14,000 में एक बच्चा, हांगकाँग में 4,000 में एक और चीन में 2,831 में एक बच्चा CH रोग से ग्रसित पाया गया है। रोग प्रभावित बालिकाओं की संख्या, बालकों की अपेक्षा दुगनी पायी गई है। इन सबके मद्देनजर पश्चिमी-राष्ट्रों ने, पिछले दो दशकों से राष्ट्रीय स्तर पर परीक्षण कार्यक्रम (नेशनल लेवल स्क्रीनिंग प्रोग्राम, NLSP) लागू किये हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) और अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी (IAEA) विकासशील देशों को सर्वेक्षण करने और प्रारंभिक अध्ययन करने में सहायता व मार्गदर्शन दे रहे हैं। समय पर किये गये निदान व इलाज का प्रभाव बच्चों को मिलने वाले लाभ से स्पष्ट हो गया है। इंडियन पेडियाट्रिक एसोसियेशन (IPA) के अनुसार, विकासशील देशों(भारत सहित) में राष्ट्रीय स्क्रीनिंग कार्यक्रम न होने के तीन मुख्य कारण हैं : जांच के असुविधाजनक तरीके, विश्वसनीय प्रयोगशालाओं की कमी और अधिक लागत।

के अनुसार, विकासशील देशों(भारत सहित) में राष्ट्रीय स्क्रीनिंग कार्यक्रम न होने के तीन मुख्य कारण हैं : जांच के असुविधाजनक तरीके, विश्वसनीय प्रयोगशालाओं की कमी और अधिक लागत।

अत: नवजात शिशुओं को CH के लिए जांचने हेतु तकनीकी रूप से ठीक एक ऐसी आमापन विधि की अत्यंत आवश्यकता है जो छोटी और बड़ी प्रयोगशालाओं में इस्तेमाल की जा सके। प्राय: TSH का आमापन इम्यूनो रेडियोमिट्रीक ऍसे (IRMA) या अन्य तुल्य असमस्थानिक ऍसे द्वारा किया जाता, जिसके लिए 1 मिली. रक्त लगता है। 3-4 दिन के नवजात शिशुओं से, विशेषत: पूर्ण काल पूर्व उत्पन्न शिशुओं से, इतना रक्त प्राप्ति भी कठिन है। अत: सीरम आधारित, TSH - ऍसे परीक्षण, जो वयस्कों या बच्चों में किये जाते हैं, उन पर करना काफी मुश्किल है। दुनिया भर की कई प्रयोगशालाओं में, फिल्टर पेपर ब्लड-स्पाट (छन्नक-पत्र पर रक्त-धब्बा) विधि प्रचलित है। पर इसकी अपनी कई सीमाएं (त्रुटियाँ) हैं; जैसे छन्नक-पत्र पर रक्त नमूनों को एकत्र करना और उनका भंडारण, छन्नक-पत्र की गुणवत्ता, पेपर पर रक्त फैलाव में असमानता, पेपर से सूखे रक्त को निक्षालित कर आमापन नलिकाओं में डालना, उनमें गये पेपर-टुकड़ों को नलिकाओं से बाहर निकालना आदि। ये सब बातें, विश्लेषण की अपरिशुद्धता को बढ़ाने में अपना योगदान देती हैं।

अत: इन सबको ध्यान में रखकर नयी विधि विकसित की गयी है, जिसमें सिर्फ 25 या 50$\mu\ell$ (माइक्रोलीटर) रक्त लगता है; जिसे अर्धस्वचालित पिपेट या 4.5 रक्त -स्पाट पंचरों द्वारा, नवजात शिशु की एड़ी से लिया जाता है। वर्तमान में प्रचलित HTSH - IRMA किट (इसकी आपूर्ति BRIT कर रहा है) में थोड़ा परिवर्तन कर, हम इसे CH स्क्रीनिंग में प्रयुक्त कर सकते हैं।

संकलन : डॉ. कैलाशचंद्र भल्ला
बी-12, गीतांजली, प्लॉट -52,
सेक्टर -17, नवी मुंबई - 400 705.

अन्य विज्ञान समाचार

1. अब सुई नही चुभेगी :

अमरीका के हॉर्वड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने एक ऐसे इन्जेक्शन का निर्माण किया जो आपको बिल्कुल नहीं चुभेगा। उनके दल ने त्वचा की सतह पर इन्जेक्शन चुभाने की जगह निष्क्रिय एल्यूमिनियम ऑक्साइड (Al_2O_3) दवायुक्त गैस का निर्माण किया है जिसकी पतली धार दबाव द्वारा त्वचा के अंदरूनी भागों में पहुँच जाऐगी। वस्तुत: एल्यूमिनियम ऑक्साइड प्रयुक्त गैस का यह गुण है कि त्वचा के ऊपरी सतह को हटाकर छोटे छिद्र कर देते हैं। इस प्रक्रिया में एल्यूमिनियम ऑक्साइड के धारदार कणों द्वारा खुदरी त्वचा हटने लगती है एवं नीचे की सतह पर अत्यंत महीन छिद्र बन जाते हैं जिनकी सहायता से दवाओं को पहुंचाया जाता है। यह तकनीक माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक मेकेनिकल सिस्टम (MEMS) पर आधारित है जिसके कारण इस सुई का नाम माइक्रोसीजन इन्जेक्शन रखा गया है। त्वचा के अंदरूनी भाग तक दवा को पहुँचने में करीबन 20-25 सेकंड का समय लगता हैं जो साधारण इन्जेक्शन से तीन गुना कम है। इसके और फायदे भी हैं जैसे इससे संक्रमण नहीं होता, इसे आप बार-बार इस्तेमाल कर सकते हैं। डिस्पोजेबल नहीं होने के कारण प्लास्टिक से होने वाले प्रदूषण को भी नियंत्रित कर सकते हैं। लेकिन फिलहाल इसकी कीमत 10 डॉलर यानि 400 रु. है जो दवा की कीमत में भी ज्यादा है फिर भी इसके अनेकों फायदे हैं।

2. ब्रेन स्कैन से अपराधी गतिविधि का पता लगेगा:

अब ब्रेन स्कैन फोरेंसिक विज्ञानी के लिए काफी मद्दगार साबित होगी क्योंकि इससे अब अपराधी की सोच का पता लगाया जा सकता है। ज्ञातव्य है कि सोच का पता लगाने हेतु नार्को एनालिसिस एवं लाई डिटेक्टर का इस्तेमाल अपराधियों के लिए किया जाता है।

जर्मनी की एक प्रयोगशाला ने मैग्नेटिक रेजोनेन्स इमेज (MRI) मशीन से कई शोध भी किए हैं, जिसमें दो अंकों को जोड़ या घटाकर एवं दो स्विच से ऑन-ऑफ कर यह पता लगाया कि किसे ऑन करने से एम. आर. आई में परिवर्तन होता है। एम. आर. आई को गंभीरता से लेते हुए वैज्ञानिकों ने ब्रेन स्कैन के जरिए यह जानने की कोशिश की कि किसी काम को अंजाम देने में पहले अपराधी के दिमाग में क्या परिवर्तन हो रहा है। किस तरह के विचार उभर रहे हैं? और अंकों के जोड़ घटाव से सिग्नल में हो रहे परिवर्तन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि शारीरिक गतिविधि होने में पहले अपराधी की

सोच किस तरह की है। बर्लिन के बर्नस्टेन सेंटर फॉर कम्प्यूटेशनल न्यूरोसर्जन के डाक्टरों ने यह अपने शोध के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि अपराधी कैसे पहले सोचते हैं और बाद में उच्च स्तर के दिमागी शक्ति का इस्तेमाल करते हैं।

3. मरम्मत के लिए नासा का अंतरिक्षयान हैंगर हुआ:

पिछले महीने नासा का अंतरिक्षयान में गड़बड़ी के कारण उड़ान को 15 मार्च के बजाय मई तक टालना पड़ा। इसकी मरम्मत करने के लिए अंतरिक्ष वैज्ञानिक अटलांटिक को प्रक्षेपण स्थल मे वापस हैंगर में ले गए। हैंगर तक की 5.7 किलोमीटर की दूरी सफलतापर्वूक तय करने के लिए ट्रांसपोर्टर्स को लगभग 7 घंटा 5 मिनट का समय लगा । 26 साल से चलाए जा रहे नासा के अंतरिक्षयान कार्यक्रम में ऐसा 18वीं बार हुआ जब किसी यान को लांच पैड से वापस हैंगर में ले जाना पड़ा। वस्तुत: ओलावृष्टि के कारण अटलांटिक के बाहरी ईंधन टैंकों को ढकने वाली प्रतिरोधक सिरामिक्स में हजरों खड्डे पड़ गए थे। इस ईंधन टैंक की मरम्मत कैनेडी अंतरिक्ष केंद्र द्वारा की जाएगी जो टैंक को जल मार्ग से भेजेगा।

संकलन : संजय गोस्वामी
एन. आर. जी. बी.ए. आर. सी. , मुंबई –400 0 85.

कूछ फूल : कुछ कांटे

'वैज्ञानिक' के अक्तूबर 2006 अंक में डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा लिखित लेख 'कांच एवं कांच –सिरामिकों से कुछ नयी संभावनाएं' एक उत्कृष्ट एवं रोचक लेख पढ़ने को मिला। समय के साथ साथ हमारी जरूरतों को पूरा करने के उद्देश्य से पुरानी वस्तुओं के स्वरूप को बदला गया जैसे तश्तरी, कप–प्लेट। चीनी मिट्टी से बने बर्तन, जो वस्तुत: क्ले से बने होते हैं सिरामिक्स पदार्थ होते हैं, को आधुनिक युग में अंतरिक्ष के सफर तक के लिए श्रेष्ठ और उस वातावरण के अनुकूल बनाया गया। आज सिरामिक्स का उपयोग ताप प्रतिरोधी पदार्थ के लिए काफी तेजी से हो रहा है। चाहे अंतरिक्ष का क्षेत्र हो या हार्डवेअर, ऑटोमोबाईल, स्ट्रक्चरल , डायनमिक्स, रिफ्रेक्टरी या डेंटल का क्षेत्र हो। सभी में सिरामिक्स का उत्तम योगदान है यहाँ तक कला के क्षेत्र में भी पॉटरी आर्ट की शिक्षा होती है, लोग विदेश में तकनीकी सीखने जा रहे हैं। लेकिन डॉ. कोठियाल के लेख में कांच एवं सिरामिक्स दोनों के समन्वयन से उन्नत पदार्थ को रेखाकिंत किया गया है। काँच और सिरामिक्स में अंतर यह है कि काँच सिरामिकों की अपेक्षा भंगुर होता है एवं ताप सहने की क्षमता भी कम होती है। लेकिन पारदर्शी एवं कुचालक होने के कारण सिरामिक पदार्थ में जोड़ का नये–नये उपकरण / यंत्र बनाए जा रहे हैं। ऐसी जानकारी अन्य विज्ञान पत्रिकाओं में काफी कम मिलती है। लेकिन डॉ. कोठियाल के लेख के अनुसार काँच एवं काँच सिरामिक से नॉन–मैटेलिक को नयी–नयी प्रोसेसिंग तकनीकों के जरिए कांच–धातु सील, ग्लासवेयर, फाइबर ऑप्टिक्स, माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक्स जैसे तमाम सिरामिक्स उत्पादों को नया आयाम प्रदान करता है, जो आधुनिक विज्ञान के लिए वरदान है।

– संजय गोस्वामी
डबल्यू. आइ. पी.,
बी. ए. आर. सी, मुंबई – 400 085.

आप द्वारा प्रेषित वैज्ञानिक का अंक 4/1 वर्ष अक्तूबर 2006 - मार्च 2007 प्राप्त हुआ। आभार। यह अंक पूर्ववर्ती अंकों को भाँति विविध सूचना प्रद आलेखों, टिप्पणियों, विज्ञान कविताओं, कथा एवं समाचारों से युक्त है। लेखों में सभी लेख रोचक – और ज्ञान वर्धन हेतु उपयोगी हैं। सिरामिकों से कुछ नयी सभावनाएं, पीलिया और ब्रह्मांड से संबंधित लेख रोचक हैं। रूसी अतंरिक्ष वैज्ञानिक सर्गेई कोरोलेव की जीवनी युवा अतंरिक्ष वैज्ञानिकों के लिए सूचना प्रद और प्रेरणास्पद सिद्ध हो सकती है। विज्ञान कथा हेतु आभार।

– डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय
परिसर, कोठी काके बाबू, देवकाली मार्ग,
फैजाबाद – 224 001. (उ.प्र.)

''वैज्ञानिक पत्रिका'' अक्तूबर 2006 - मार्च 2007 का अंक प्राप्त हुआ। लेखों, टिप्पणियों तथा कविताओं से परिपूर्ण यह अंक बहुत ही ज्ञानवर्धक है। डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार ने 'पीलिया' जैसी खतरनाक एवं संक्रामक बीमारी के कारण, लक्षण, बचाव, निदान एवं नियंत्रण के सभी पहलुओं पर जानकारी प्रस्तुत की है। इसी तरह बालकृष्ण साहब ने अपनी टिप्पणी ''रक्त चाप और नमक'' में नमक की वास्तविकता को जानकर उच्च रक्त चाप संबंधित आहार को पहचाना है।.

– राघव शैलेन्द्र कुमार सिंह
भारतीय उष्णदेशीय मौसम विज्ञान संस्थान
डाक घर– एन. सी. एल.,
पाषाण रोड, पुणे – 411 008

''वैज्ञानिक'' पत्रिका का एक–एक अंश अत्यन्त रोचक एवं शोधकार्य में महत्त्वपूर्ण साबित हो रहा है। हिंदी के छात्र / छात्राओं एवं वैज्ञानिकों के लिए एक नींव का पत्थर की तरह काम कर रहा है। पत्रिका के सफल संचालन हेतु हार्दिक बधाई।

– मन भरनप्रदसाद द्विवेदी
म. गां. चि. ग्रा. वि. वि.
चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

भूलसुधार

पिछले अंक में ध्यानाकर्षित छपी कुछ, अशुद्धियों के लिए हमें खेद है। ये कृपया इन्हें शुद्ध कर लें।

1. पृष्ठ 44 : डॉ. ए. के. चतुर्वेदी का सही पता 8/4 राम निवास भवन है।
2. पृष्ठ 1 तथा 51, लेख 'वैनीला एक उपयोगी पौधा', लेखक का सही नाम विजन कुमार है।
3. पृष्ठ 61, अंतिम पंक्ति मुंबई – 400 705 के स्थान पर पुणे– 411 008 होना चाहिए।

रचनाकारों से विशेष निवेदन

कृपया प्रकाशनार्थ पांडुलिपि तैयार करते समय संपादन की सुविधा के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें :

1] (क) विभक्तियों को शब्दों से अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'राम ने', 'मेज पर', 'लड़कों को'
(ख) सर्वनामों की सभी विभक्तियों को मिला कर लिखा जायें -
उदाहरण - 'उसने', 'मैंने', 'उनका', 'हमसे'
(ग) जिन सर्वनामों के अंत में 'ही' अथवा 'ई' लगा हो, उनकी विभक्तियों को अलग लिखा जाये -

2] पूर्वकालिक क्रियाओं के 'कर' को अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'जा कर', 'आ कर', अन्यथा 'कर' मिलाकर लिखें ।

3] संयुक्त क्रियाओं में दोनों अंशों को अलग-अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'आ गया', 'चल पड़ा', 'हो सका'

4] जिन भूतकालिक कृदंत क्रियाओं अथवा विशेषणों का अंत 'या' से होता है, उनके स्त्रीलिंग और बहुवचन रूपों में 'य' का ही प्रयोग किया जाये -
उदाहरण - 'गया, गयी, गये', 'नया, नयी, नये', 'आया, आयी, आये', 'लाया, लायी, लाये', 'पाया, पायी, पाये', 'खाया, खायी, खाये', 'किया, किये आदि ।
दृष्टव्य है कि 'भाई', 'लाई', 'पाई' आदि संज्ञाएं हैं । भविष्यकाल में ये रूप निम्न प्रकार होंगे - आयेगा, पायेगा, लायेगा, जायेगा आदि । आवेगा, जावेगा आदि प्रयोग ठीक नहीं हैं ।

5] 'हुआ' जैसी जिन क्रियाओं के अंत में 'आ' है उनके स्त्रीलिंग 'हुई' व बहुवचन 'हुए' के अनुसार होना चाहिए ।

6] 'लिये/लिए' : 'लिये' को 'लिया' का बहुवचन रूप मानें और 'लिए' को विभक्ति चिन्ह।
'चाहिये/चाहिए' : 'चाहिए' ही लिखा जाये।

7] 'एसा/ऐसा' : 'ऐसा' लिखा जाये ।
'दिखाई/दिखायी' : 'दिखाई' संज्ञा रूप मानें और 'दिखायी' भूतकालिक क्रिया (स्त्रीलिंग) । उदाहरण - 'सांप दिखाई पड़ा', 'मैंने उसे पुस्तक दिखायी' इसी प्रकार 'पढ़ाई' और 'पढ़ायी' में भी अंतर करें ।

8] आदरार्थ आज्ञा रूपों में संभावनार्थक क्रियाओं में 'ए' ही लिखा जाये -
उदाहरण - 'आइए', 'खाइए', 'जाइए', 'समझिए', 'कीजिए', 'रखिए' आदि ।

9] अनुस्वार और अनुनासिक ध्वनियां : 'संयुक्त व्यंजन' की अनुनासिक ध्वनि को 'अनुस्वार' के द्वारा दर्शाया जाना चाहिए -
वर्ग का प्रत्येक पंचम वर्ण यथा, ङ ('क' वर्ग), ञ ('च' वर्ग), ण ('ट' वर्ग), म ('प' वर्ग) व न ('त' वर्ग) अनुनासिक ध्वनियां है ।
अनुस्वार स्थापन का नियम इस प्रकार है : जिस किसी अक्षर के आगे यदि उसी वर्ग की अनुनासिक ध्वनि है तो उसे अनुस्वार (बिंदी) से बदला जा सकता है;
उदाहरण - कंगन, अंक, व्यंजन, रंजन, ठंडा, डंडा, पंडित, कंपन, पंप, बंद, परंतु, किंतु, मृगांक, दंडित, संबंध, अंत आदि ।
इस नियम का प्रयोग ध्यानपूर्वक करना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है । जन्म, मान्य, समन्वय, सम्मति आदि शब्द वैसे ही रहेंगे ।

10] एकवचन से बहुवचन - 'या' से 'ये', 'ए' नहीं । जैसे, रुपया - रुपये, हंसिया - हंसिये ('हंसिए' आदरार्थ आज्ञा रूप होगा)

11] संस्कृत के जो शब्द हिंदी में तत्सम रूप में प्रचलित हैं, उनमें 'य' का व्यवहार उचित है । जैसे, अस्थायी, बाजपेयी, उत्तरदायी आदि । इन्हें अस्थाई, बाजपेई, उत्तरदाई लिखना न तो व्याकरण सम्मत है और न व्यावहारिक ।

12] चंद्र-बिंदु का प्रयोग - छपाई की सुविधा के लिए चंद्र-बिंदु की ज़गह अनुस्वार का प्रयोग किया जाये । जैसे, अंधा, आंख, अंगना, चांद, मां, पहुंचना, हां आदि ।

13] संख्याओं को अरैबिक (अंग्रेजी) में लिया जाये -
1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10,

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भा.प.अ.केंद्र, ट्रांबे, मुंबई-85 के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित एवं श्री. कुलवंत सिंह द्वारा रॉयल एन्टरप्राइजेस, चेंबूर, मुंबई-71. (फोन : 25234229) में मुद्रित व प्रकाशित ।

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R.No. : 18862/70

दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत ।

'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद'
की
वैज्ञानिक मोनोग्राफ प्रकाशन योजना

परिषद ने विज्ञान के विभिन्न विषयों पर मोनोग्राफ (पृष्ठ संख्या लगभग 64, 96, 128, 192, 256) प्रकाशित करने की एक योजना बनायी है । इस कार्य के लिए उचित मानदेय, (120 रु. प्रतिपृष्ठ लेखन एवं टंकण, चित्रों इत्यादि के लिए अलग) देने का प्रावधान है । परंतु प्रकाशित सभी पुस्तकों पर परिषद के सर्वाधिकार सुरक्षित रहेंगे । विषय-विशेषज्ञों से लगभग 5-6 पृष्ठों में पुस्तकों की विस्तृत रूपरेखाएं आमंत्रित हैं । जिसमें अध्याय, अनुच्छेद, संदर्भ सूची इत्यादि की जानकारी हो ।

मोनोग्राफ मुख्य वैज्ञानिक विषयों यथा नाभिकीय, ताप रसायन, जीव विज्ञान आदि पर न होकर उप-विषय, जैसे आइसोटोप, लेसर, रेडियोधिर्मिता, अतिचालकता आदि पर हों । उदाहरणार्थ कुछ उप-विषयों के सुझाव इस प्रकार हैं :

- **नाभिकीय ऊर्जा के शांतिमय उपयोग**
- **नाभिकीय रिएक्टर**
- **नाभिकीय ईंधन - यूरेनियम, प्लूटोनियम**
- **नाभिकीय पदार्थ - कवच, मंदक, परिरक्षक एवं अन्य**
- **आइसोटोप उत्पादन व उपयोग**
- **रेडियोसक्रिय विकिरण व उनके उपयोग**
- **नाभिकीय ऊर्जा एवं सुरक्षा**
- **एजिंग (काल प्रवाहन) एवं डिकमीशनिंग**
- **ईंधन पुनर्संसाधन**
- **अन्य संबद्ध कार्य**

रूपरेखाओं का मूल्यांकन परिषद द्वारा गठित एक विशेष समिति करेगी । मूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद लेखक को परिषद के साथ लेखन कार्य संबंधी अनुबंध पर हस्ताक्षर करने होंगे । इस संबंध में अधिक जानकारी के लिए परिषद सचिव से इस पते पर संपर्क करें : **श्री जयप्रकाश त्रिपाठी,** प्रभारी अधिकारी, न्यूक्लीयर मैटेरियल मैनेजमेंट अनुभाग, पी.पी., एफ. आर. डी. (F.D.R.), भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई - 400 085.

E-mail:jptripathi@rediffmail.com
Tel. : 022-2559 1224